* श्रीराधासर्वेश्वरो विजयतेतराम् *

* श्रीहंसश्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्रचन्द्राय नमः *

श्रीराधाकृष्णाकरचरणाब्जचिह्नप्रकाशिका

श्रीभगवद्गुणचन्द्रिकाभ्यां सहिता ।

श्रीभगवन्नामचन्द्रिका ।

श्रीवृन्दावनवास्तव्य श्रीहरिप्रियाशरणोपनामक

पण्डित श्रीदुलारेप्रसाद शास्त्रिणा

सङ्गृहीता

श्रीनिम्बार्कपाठशालाध्यापक पं॰ रामप्रसादशर्मा

रचितया भाषाटीकया समलङ्कृता

सा च—

रोहतकजिलान्तर्गतबेरीग्रामनिवासि सेठश्रीजानकीदासजी

तथा

सेठ कृपारामधर्मपत्नी नन्हीबाई साहाय्येनैव मुद्रिता

प्रथम बार	संवत्	मूल्य—
००० प्रति	१९८८	श्रीकृष्णनामभक्ति

श्रीभगवन्नामचन्द्रिका, श्रीभगवद्गुणचन्द्रिका, श्रीराधाकृष्णाकरचरणाब्जचिन्हप्रकाशिकानां विषयानुक्रमणिका प्रारभ्यते ।

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
मङ्गलाचरणम् ।	१
आर्यसमाजिनां पूर्वपक्षः ।	,,
तदुक्तवचनानां खण्डनम् ।	२
तत्र प्रमाणम् ।	,,
श्रीभगवन्नाममाहात्म्यम् ।	७
तत्र श्रीकृष्णनामप्राधान्यम् ।	१५
श्रीकृष्णशब्दार्थ निरूपणम् ।	,,
श्रीकृष्णनाम्नः पुरुश्चरणादिविनैवमोक्षपर्यन्त फल प्रदत्वम् ।	१७
अन्यभगवदवताराणां मध्ये श्रीकृष्णावतारस्य पूर्णतमत्वम्	१९
श्री राधाशब्दार्थ निरूपणम् ।	२१
श्री राधाकृष्णेति षोडशनाम्नामेव जप्यत्वम् ।	२७
पापानां प्रायश्चित्तं कृच्छ्र चान्द्रायणादि भगवन्नाम वेतिपूर्वपक्षः ।	३०
तत्र कर्मादिषु श्रद्धावतो मन्वादि प्रोक्तकृच्छ्र चान्द्रायणादीनां प्रायश्चित्तत्वम् ।	,,
श्रीमद्भागवतादि पुराणेषु श्रद्धावतांतु श्रीभगवन्नामोच्चारण मेव प्रायश्चित्तम् ।	,,
कृते पापेऽनुतप्तस्य भगवन्नाम्नः सकृदुच्चारणे नैव पापक्षयः ।	३१
तद्रहितानांतु भगवन्नाम्नामावृत्यैवपापनिवृत्तिः ।	,,
अनिर्द्धारित संख्याकालाया आवृत्तेः कथं विधान मिति पूर्वपक्षः ।	,,
पापतारतम्यादावृत्तितारतम्यमित्युत्तरितम् ।	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः

पूर्वं मीमांसोक्त संयोग पृथक्त्वन्यायेन श्रीभगवन्नाम्नः
कर्माङ्गत्वं स्वतन्त्र पापक्षये हेतुत्वमपीति मीमांसक
मतेनेदमुत्तरम् । ३४

वस्तुतस्तु श्रीभगवन्नाम्नां स्वातन्त्र्येणैव पापना
शकत्वम् । ३५

श्रीभगवन्नाम माहात्म्ये मीमांसका अर्थवादं कल्प
यन्तीति पूर्वपक्षः । ३६

श्रीभगवन्नाममाहात्म्यवाक्ये स्वर्थवादाभाव
इत्युत्तरपक्षः । ४०

श्रद्धया भगवन्नामोच्चारणे कृते सद्यः पापक्षयः ।
अश्रद्धया भगवन्नाम्नां बहुकालावृत्त्या पापनिवृत्तिः । ४४

पुत्रादि सङ्केतेन परिहासादिना वा श्रीभगवन्नामो
च्चारणे श्रद्धाभाव इति पूर्वपक्षः । ४४

साङ्केत्य पारिहास्यादिषु आसन्नमरणोऽधिकारी
त्युत्तरपक्षः । ४५

सर्वेषां भगवन्नाम्नां तादृशी शक्तिर्वा केषांचिदिति
पूर्वपक्षः । ४६

सर्वं भगवन्नाम्नां तादृशी शक्ति स्वीकारे रामरामेति
पाद्मोक्तवचनस्यानर्थक्यम् अन्यभगवन्नामान-
र्थक्यं चेति पूर्वपक्षः । ५०

सर्वेषां भगवन्नाम्नां मुक्तिदान सामर्थ्यमुत केषांचिदिति
पूर्वपक्षः । „

सर्वेषां मुक्तिदान सामर्थ्यमस्तीत्युत्तरम् ॥ तुल्यञ्चे
न्निखिलभगवन्नाम्नां सामर्थ्यं तर्हि श्रीरामकृष्णादि
नाम्नां वैशिष्ट्यं नवेति पूर्वपक्षः । „

सर्वेषां भगवन्नाम्नामेव मुक्तिदानसामर्थ्ये तुल्यत्वमि
त्युत्तरपक्षः । ५१

येनस्य भगवन्निर्दिष्टप्रसङ्गे तन्नामोच्चारणस्य
मुक्तिफलत्वं कथंनेति पूर्वपक्षः । ५४

विषयाः	पृष्ठाङ्का
भगवन्निन्दा जन्यभगवन्नामापराधेन तत्फलाभाव इत्युत्तरम् ।	५४
शिशुपालादीनां तु निरन्तर वैरानुबन्धेन निन्दाजन्य दोषस्यापि दग्धत्वादेव प्रभुप्राप्तिः ।	,,
श्रीभगवन्नामोच्चारणे क्रमः ।	५५
श्रीभगवन्नाममाहात्म्यबोधकानि कतिचित् पद्यानि ।	५८
पाद्मोक्तादशभगवन्नामापराधाः ।	७६
श्रीविष्णुपुराणोक्ता द्वात्रिंशत्सेवापराधाः ।	९२
श्रीवाराहपुराणोक्ता द्वात्रिंशत्सेवापराधाः ।	९४
द्वात्रिंशत्सेवापराध शमन प्रकारः ।	९९
श्रीभगवन्नामचन्द्रिकासमाप्तिः ।	१००
श्रीभगवद्गुणचन्द्रिका प्रारम्भः ।	१०२
श्रीपुरुषोत्तमाचार्यपादप्रणीत श्रीवेदान्तरत्नमञ्जूषोक्ता ज्ञानादारभ्य सर्वानति कारुण्य पर्यन्ताः सप्तविंशति गुणाः ।	११९
प्रपन्न सुरतरुमञ्जर्युक्ता द्वादशगुणाः श्री भा० १ स्क० १६ अ० धर्म प्रति पृथ्व्युक्ता अष्टाविंशतिश्लोकादारभ्य त्रिंशत्तमश्लोकपर्यन्ता श्रीधरस्वामिभि रेकोनचत्वारिंशद्गुणा व्याख्याताः	११८
श्रीजीवगोस्वामिभिः प्रीतिसन्दर्भे षडशीतिसंख्याका गुणा विवृताः ।	
श्रीभक्तिरसामृतसिन्धूक्ताश्चतुःषष्टिसंख्याका गुणा वर्णिताः	१२३
श्रीछान्दोग्योपनिषदुक्ता अपहतपाप्मत्वाद्योऽष्टौ गुणा वर्णिताः ।	१२८
श्रीभगवद्गुणचन्द्रिकासमाप्तिः ।	१२९
श्रीराधाकृष्णकरचरणाब्जचिन्हप्रकाशिका प्रारम्भः ।	१३०
श्रीराधिकावामदक्षिणकरचरणाब्जचिन्हानि ।	
श्रीकृष्णवामदक्षिणकरचरणाब्जचिन्हानि ।	१३३
श्रीराधाकृष्णकरचरणाब्जचिन्हप्रकाशिका समाप्तिः ।	१३६
श्रीराधाकृष्ण कर चरणाब्ज चिन्ह फलानि	१३७

* श्रीराधासर्वेश्वरोविजयते *

समर्पण

जय नामधेय मुनिवृन्दगेय-
जनरञ्जनाय परमक्षराकृते।
त्वमनादरादपि मनागुदीरितो-
निखिलोग्रतापपटलीं विलुम्पसि॥

जयभक्तहृदय मन्दिर विराजमान !

श्रीराधासर्वेश्वरदेवजू !

आपके श्रीनामरत्नों से समलङ्कृत बहुत दिवस से सङ्कलित यह श्रीभगवन्नामचन्द्रिका, श्रीभगवद्गुण चन्द्रिका, श्रीकरचरणाब्ज चिन्ह प्रकाशिकासहिता श्रीचरणारविन्द में सादर समर्पित है।

समर्पक—

आपका चरण सेवक—

श्रीहरिप्रियाशरणोपनामक दुलारेप्रसाद

श्रीधामवृन्दावन।

।। श्रीनिकुंजविहारिणे नमः ।।

वृन्दावनकलानाथौ, हृदयानन्दवर्द्धनौ ।
सुखदौ राधिकाकृष्णौ, भजेऽहं कुंजगामिनौ ॥१॥

श्रीराधाकृष्णविहारिभ्यो नमः।
॥ श्री ६ श्रीभगवन्निम्बार्क महामुनीन्द्राय नमः ॥

वन्दारुजनमन्दारं वात्सल्यादि गुणार्णवम्।
श्रीनिम्बार्कसुनिं वन्दे श्रीनिवासं जगद्गुरुम् ॥१॥

प्रिय सनातन धर्मानुरागी भगवद्भक्त सज्जनो !

आप लोगों को विदित है कि इस समय धर्मपर बलिदान होनेवाले परमार्थ परायण ईश्वरनिष्ठ भारतीयों में धर्मभाव के साथ ही साथ प्रतिदिन भक्ति भी लुप्त प्राय होती जारही है। इसका मुख्य कारण पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव, एवं धार्मिक सच्छास्त्र शिक्षा में अरुचि, तथा नवीन पठनानुसार उच्चपदवी प्राप्त करने में पूर्वाचार्य प्रणीत शास्त्रों के अवलोकन, समय के अभाव वश, दिव्यज्ञान का अप्राप्त होना ही है। अर्वाचीन अध्ययन में उपयोगी सामाजिक इतिहासों की कपोल कल्पनाओं द्वारा वित्तवृत्तियों का विपरीत धर्म सम्बन्ध से भगवदुपासना महत्त्व को भूलकर अन्य भाषा भाषी अध्यापकों से अध्ययन के कारण बाल्य अवस्था में ही भगवद्भक्ति परायण धर्मनिष्ठ एतद्देशीयों की सन्तान तत्त्व विमुख होती जाती हैं।

प्राचीन काल में इस देश के अध्यापकगण सर्वशास्त्र सम्पन्न देशस्थ धार्मिक नैतिक सामाजिक अध्यापन क्रम से परिचित हुआ करते थे इसी कारण ईश्वर उपासना की प्रणाली तथा उसके महत्त्व को भली भांति जानते थे, जैसे कहा भी है कि—

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्यात् जननी न सा स्यात्
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्--
न मोचयेयः समुपेतमृत्युम् ॥ १ ॥

अर्थात् भगवान् श्रीऋषभदेवजी कहते हैं कि गुरु, स्वजन, पिता, माता, दैव, पति, वे नहीं कहलाते जो जीवन मरणादि से न छुड़ा सकें। इनतत्वों के ज्ञाता वे महानुभाव अध्यापक इस देश के छात्रों की अवस्थानुसार आदर्श धर्मभाव का संमान कर त्रैकालिक मन्त्रजपादिकों को सर्व प्रधान रखते हुए शिक्षा का प्रारम्भ किया करते थे किन्तु समय के प्रभाव से अब वह बात नहीं रही शिक्षा का वह प्राचीन क्रम सर्व श्रेष्ठ होते हुए भी समूल नष्ट हो गया। विजातीय, विधर्मी शिक्षकों के हाथ में आधुनिक शिक्षाकार्य पड़जाने से उसका प्रतिकूल फल दृष्टिगोचर हो रहा है जो प्रभु भक्ति का भावतो छोड़ दिया और भौतिक उन्नति के जाल में जन समुदाय फंस गया है जिसका परिणाम उपनिषद् वाक्यानुसार हो रहा है।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्। श्री.भ.गी.

अर्थात् विषयेन्द्रिय संयोग से आगे जो अमृत के समान है परिणाम में विष के तुल्य वह सुख राजस कहलाता है। सारासार का विवेक न होने के कारण एवं भौतिक सुख लालसा के बढ़जाने से ईश्वर में अश्रद्धा होगई, जो भौतिक पदार्थ देखने में ऊपर से अधिक प्रिय लगते हैं वे ही कालान्तर में दुःख का कारण बनजाते हैं।

भाइयो ! विचार की आवश्यकता है कि–

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्।

अर्थात्––प्रथम तो यह स्वार्थों को देने वाला अनित्य मनुष्य शरीर ही दुर्लभ है उसमें भी भगवत् भक्तों का दर्शन तो अत्यन्त दुर्लभ है। जब सन्त महात्माओं का मिलना ही कठिन है तो उपदेश कौन देवे क्योंकि शास्त्रीय शिक्षा भी तो नहीं मिली जिस से हेयोपादेय–कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार होकर अन्तःकरण की मलिनता दूर होती।

शिक्षा ने विषय भोगों का कीट बना डाला है अनित्य सुखों की प्रबल पिपासा, अनेक प्रलोभन दे देकर प्रतिक्षण बढ़ती ही जारही है। भगवत् उपासना विहीन विषय वासना से बंधा हुआ, चंचल चित्त इधर उधर दौड़ता फिरता है, अधिक दुःख आपड़ने पर, कभी २ बहुत छट-पटा ने लगता है, उस समयमें यदि इस जीव का कोई सुकृत पूर्वजन्मा र्जित उदय हो जाये तथा परम दयालु परमेश्वर की अनिर्वचनीय अनुकम्पा हो जाये और अनिवार्य दुःख से निवृत्त होने के लिये नाम लेले कर दीनता पूर्वक पुकारता है तो सुख का सामनाभी हो जाता है।

बस फिर क्या है " मायामयोयंगुणसम्प्रवाहः " मायामय चक्र में गोविन्द को फिर भूल जाता है और पुनः संसारी बन्धन में बंध जाता है तथा संसृति चक्रजाल में पड़ कर जन्म-मरण का अनु-रागी बना हुआ दुःख भोगता है। इस जीव नाम धारी को कहीं भी सुख शान्ति नहीं मिलती, महानुभाव शास्त्रकारों का दृढ़ सिद्धान्त है कि, इन विमुखताभरी विपत्तियों में कलियुगभी एक बड़ा भारी कारण है।

इन दुःखों से निवृत्त होने के लिये त्रिकालदर्शी दयालु शास्त्राचार्यों ने साधनहीन कलि के जीवों को प्रभु के दिव्य नाम गुण कर्मादिका कीर्तन गान आदि, नवधा भक्ति रूप में बतलाया है किन्तु यदि वस्तुतत्त्व देखा जाय तो कलि सन्तरणोपनिषत् में कहा है कि—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥ १ ॥

अर्थात् कलियुग में हरिनाम ३ ही केवल गीत है अन्यथा गीत नहीं है ३ । समस्त शास्त्रोंमें भगवन्नाम का माहात्म्य अधिकतर गाया गया है इस देशमें सर्वदा आपत्ति आनेपर जनता केवल भगवन्नाम का ही सहारा लेती रही है ।

अतएव-प्रसन्न हो भक्तवत्सल भगवान भक्तों के उद्धारार्थ स्वयं अवतार धारण किया करते हैं । अथवा स्वशरणागत दीन दुःखितों का उद्धार कियाकरते हैं । किन्तु इस समय प्रायशः जनता का हार्दिक भाव भगवद् भक्ति तथा शास्त्रोक्त भगवन्नामों की ओर से हटकर क्षणिक तुच्छ भौतिक सुख की तरफ झुक गया है ।

आधुनिक अशिक्षित जीवों का प्रचार देखकर विद्वानों को भ्रान्त न बनना चाहिये किन्तु समयानुसार भगवन्नाम शिक्षा देकर गिरे लोगों को उठाना चाहिये । यदि इन व्यक्तियों के ऐसे आचार न होंगे तो आप महर्षियों के वाक्यों में दोष पहुंचेगा । यथा—

वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः
धर्म न्याय व्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ॥ २ ॥

कलियुग के मनुष्यों में धन ही जन्म आचार गुणों का उदय करने वाला है धर्म न्याय व्यवस्था में बल ही कारण हैं जो जबर हुआ वही धर्मात्मापंच कहलाता है । इन बातों से दूर करने का उपाय केवल भगवन्नाम ही सर्व वेद वेदान्तसार है । क्योंकि जैसे कहा है:—

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपिस्मृतः
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येवहि पावकः।

अर्थात्–दूषित चित्तवालों से भी स्मरण किया भगवन्नाम पापों को हरता है क्योंकि श्रद्धा, विश्वास न हो तो क्या करे उसके लिये दृष्टान्त देते हैं कि जैसे बिना इच्छा स्पर्श की हुई अग्नि जलाये बगैर नहीं रहती है वैसे ही श्रीभगवन्नाम का पापसंघ को जलाना साधारण धर्म है। भारतीय जनता अपने कल्याण स्वरूप भगवन्नाम को भूल सुख के स्थान दुःख भोगती हुई रसातल को जारही है अर्थात् पतित होरही है इसके लिये श्री कपिलदेवजी का वाक्य है—

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो,
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः
तज्जोषणादाश्वपवर्ग वर्त्मनि
श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति १

अर्थात्–मेरे चरित्रों के ज्ञानवाली हृदय कर्णों को रसायन कथायें साधु महात्माओं के सङ्ग से हुआ करती हैं। उनके सेवन से शीघ्रही मोक्षमार्ग में श्रद्धा, रति, भक्ति क्रम सों होंगी। यानी भगवान् से सम्बन्ध होने का साधन साधुसंग हुआ वही इस समय दुर्लभ है

किन्तु–"तस्योपदेष्टा पुरुषः प्रायो भाग्येन लभ्यते" अर्थात् भाग्यवश उन उपदेष्टाओं के मिलने पर भगवद्भक्ति और नाम की शक्ति दोनों का परिचय होना सम्भव है। नाम का महत्व दृष्टान्तों द्वारा तो अजामिल, गीध, गणिका, शबरी आदि के अनुभवों से स्पष्ट है क्योंकि श्रीकृष्णत्व भी "पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः" अर्थात्

पूर्ण शुद्ध नित्यमुक्त नाम नामी भेद से रहित है यदि नाम नामी में अभेद है तो नाम स्मरणकर्ता के समीप में ही सर्वदा नामी श्री गोविन्द विद्यमान हैं।

अद्यापि नाम सङ्कीर्तन घटना प्रायशः साधु महात्माओं द्वारा प्रत्यक्ष होती है निरन्तर नाम जाप से त्रिविध ताप की शान्ति सहिष्णुता, सुख दुखों में समता, भगवत् प्रेम, जीवमात्र में दया, वानी "आत्मौपम्येन की दशा प्राप्त होती है तथा ईश्वरीय अलौकिक दिव्य गुणों का उदय हृदय में हो जाता है एवं संसार भगवद्विभूति नजर आने लगता है और अहंता ममता का दृढ़ बन्धन टूटकर दीनता से हृदय आर्द्र होकर सब प्राणियों में प्राणनाथ विराजमान हैं--इन विचारों से "ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचतिनकांक्षति, अर्थात् निर्विकार ब्रह्मस्वरूप हुआ यह प्राणी शोक इच्छा से रहित हो जाता है।

भगवन्नाम के प्रभाव को कलि में सुदर्शनावतार भगवान् श्रीनिम्बार्कमहामुनीन्द्रचन्द्र ने रचित दशश्लोकी में लिखा है कि—"कृपास्य दैन्यादि युजि प्रजायते 'यया भवेत् प्रेम विशेष लक्षणा" इसमें दैन्यादिके आदि पदकी व्याख्या जगद्विजयी श्री केशवकाश्मीर महाचार्य वर्य ने की है

आदौ दैन्यं हि सन्तोषः परिचर्या ततः परम्
ततः कृपा च सत्सङ्गोप्यसद्धर्माऽरुचिस्ततः
कृष्णे रतिस्ततो भक्तिर्या प्रोक्ता प्रेम लक्षणा
प्रादुर्भावे भवेदस्याः साधकानां अयं क्रमः ।

अर्थात-प्रेमलक्षणा उदय होने के प्रथम यह क्रम हुआ करता है

क्रमश, दैन्य, सन्तोष, परिचर्या, कृपा, सत्सङ्ग असद्धर्मों में अरुचि श्रीकृष्ण में रति फिर वही प्रेमलक्षणा भक्ति उदय होती है। इस भक्ति के उदय में नरसीमहता मीराबाई तुकाराम ज्ञानदेव आदि की कि-वदन्तियां आज तक प्रसिद्ध हैं ।

नाम की शक्ति के विषय में गो० श्रीतुलसीदास जी लिखते हैं कि "राम न सकहि नाम गुण गाई" और भी उक्ति है।

कलियुग केवल नाम अधारा
प्रभु सुमरो उतरो भवपारा ।

श्रीमद्भागवत द्वादश स्कन्ध में वर्णन किया है कि—

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतोमखैः
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् १

अर्थात कलि में केवल केशव नाम संकीर्तन के दूसरा आधार नहीं नाम के माहात्म्य एवं महत्व से शास्त्र भरे पड़े हैं किन्तु समयाभाव के कारण आधुनिक जीव उन्हें नहीं देख सकते इसीलिये यह श्रीभगवन्नामचन्द्रिका नामक छोटा सा ग्रन्थ भक्तों के सामने उपस्थित है ।

इस बात को प्रायः सभी जानते हैं कि ग्रन्थकार महानुभाव श्रीहरिप्रिया शरणोपनामक पं० श्री दुलारेप्रसाद जी शास्त्री बहुत समय से भागवतकथा तथा श्रीभगवन्नामस्मरण में निरत हैं उन्होंने अपना अनुभव बड़े परिश्रम द्वारा इस ग्रन्थ से स्पष्ट बतलाया है। अतः सज्जन साधु भगद्भक्तों से नम्र निवेदन है कि वे इस ग्रन्थ को पढ़ जीवन एवं मनुष्य देह धारणका फल ग्रहण करेंगे और ग्रन्थकारके परिश्रम को सफल बनायेंगे ।

मनीषिणः सहृदयान् क्षमध्व मितो वासकृत्
अभ्यर्थयामः स्खलितं शोधयन्तु दयालवः १

अर्थात् सहृदय विद्वानों से बार २ क्षमा के साथ प्रार्थना है कि वे दयालु अशुद्धि कहीं हो भी तो उसे शुद्ध करलें ।

भवदीय—

पं० किशोरदास

वंशीवट श्रीवृन्दावन ।

गरिष्ठो वरिष्ठः । सदा ब्रह्मनिष्ठो नितान्तं पुनर्वैष्णवानांच श्रेष्ठः ।
दुलोरप्रसादस्त्रिवेदो महात्मा द्विजः कान्यकुब्जो हरेः पादलीनः ॥१॥

तेनेयंनिर्मिता दिव्या भगवन्नाम चन्द्रिका ।
प्रीत्यै भगवतोनुग्राच्छ्रीराधाकृष्णयोः सदा ॥२॥

॥ श्रीराधामाधवो विजयते ॥

श्रीनिम्बार्कमहामुनीद्रायनमः

श्रीभगन्निम्बार्कमतमार्तण्ड श्रीदुलारेप्रसादशास्त्रीजी

महाराज का—

संक्षिप्त जीवन चरित्र।

नमो नलिननेत्राय वेणुवाद्य विनोदिने।
राधाधर सुधापानशालिने वनमालिने ॥ १ ॥

भगवत् श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्रचन्द्रदर्शित मत मार्तण्ड विद्वद्वरेण्य भक्त-पुङ्गव श्रीहरिप्रियाशरणोपनामक पं० दुलारेप्रसादशास्त्रीजी महाराज, कान्य कुब्ज कुलाब्धि कौस्तुभ निखिल शास्त्र-निष्णात श्री १०८ श्री पं० चन्द्रिकाप्रसादजी महाराज के पुत्र हैं।

आपका जन्म कानपुर जिलान्तर्गत "बाघपुर" ग्राम में विक्रम सम्वत् १९२० चैत्र कृष्णाष्टमी तिथि युक्त है। आपके जन्म समय का आनन्द बहुत ही अनुपम था क्योंकि होलिकोत्सव के पश्चात् वैष्णवी अष्टमी का व्रत हुआ करता है, यह वह दिन था, घर के बाहर के सभी धनी मानी पं० श्रीचन्द्रिकाप्रसादजी को पुत्रोत्सव में बधाई सूचक शब्दों से प्रफुल्लित करने आये थे। आपने भी सब प्रेमी जनों का सादर सत्कार किया और एक विशेषोत्सव के साथ मङ्गल कार्य समाप्त हुआ।

कुमार अवस्था में जैसे हर एक बालक प्रायशः धूल मिट्टी से खेला करते हैं आपमें इन लौकिक बाल क्रीड़ाओं का अभाव था किन्तु—

यः पञ्चहायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः
तन्नैच्छद्रचयन्यस्य सपर्यां बाललीलया ॥ १ ॥

अर्थात्—जो पांच वर्ष के माताजी से कलेवा के लिए बुलाए हुए बाललीला द्वारा श्रीकृष्णसेवा में लगे रहे किन्तु भोजन की परवाह न की·· यह विषय उद्धवजी का है किन्तु इनका भी वही हाल था।

जब पौगण्ड अवस्था आई तो प्रथम ही ग्राम में हिन्दी शिक्षा प्राप्त की पश्चात् ग्राम के समीप ही रहनेवाले शास्त्रि श्रीमणिरामजी से सिद्धान्त कौमुदी पर्यन्त व्याकरण अध्ययन किया। तथा बन्धुवर्गों के एवं श्रीपिताजी महाराज के विशेष आग्रह वश विवाहादि कार्य सम्पन्न हुए।

अबतो शास्त्र-चर्चा का भी हृदय में अधिकतर अनुराग बढ़ने लगा क्योंकि "भक्तानांलोकवैमत्यम्" तथा "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" के अनुसार आप काशी पधारे। वहां पर वेदान्तभास्कर श्रीमनीषानन्दशास्त्रीजी एवं षट्शास्त्राचार्य जगद्विख्यात पं० श्रीशिवकुमार शास्त्रीजी से भाष्य शेखर मनोरमा ब्रह्म सूत्रादि षट्दर्शन भली भांति पढ़े। घर में आनेपर कानपुर जिले के सम्पूर्ण विद्वन्मण्डल ने आपकी पूर्ण प्रतिष्ठा की।

सम्वत् १९५२ में श्रीवृन्दावन विहारीजी के चरण पङ्कज का वही पूर्वानुराग पुनः उदय हुआ और आप श्रीधामवृन्दावन आए। यहां श्रीजी के प्रेमबन्धन में ऐसे उलझे कि फिर कहीं न जा सके और श्रीराधारमण मन्दिर समीप ही कानपुरवाली पाठशाला में ज्ञान-हीन दीन ब्राह्मण कुमारों को विद्या दान करने लगे। सम्वत् १९५२ में श्रीभगवतरत्न विद्वद्वर श्रीतपस्वीदासजी महाराज से वैष्णवदीक्षा प्राप्त की। श्री तपस्वीदासजी शाहबिहारीजी के मन्दिर के समीप युगल बगीची भ्रमरघाट पर रहा करते थे।

आपकी विद्वत्ता, आपकी भक्ति अलौकिक थी "श्रीरसिक भक्तमाल" में आपके लिए लिखा है:—

(षट्पदी छन्द)

परम मनस्वी यशस्वी श्रेष्ठ "तपस्वीदास" मुनि !
जिन विद्या परमार्थ कियौ श्रीवृन्दावन में।
श्रीनिम्बार्क विनोद ध्यान कर ज्ञान भजन में ॥
छात्रन कौं रस भरित भागवत शास्त्र पढ़ायौ।
शिष्य "दुलारेलाल" शास्त्रिसम कर यशपायौ ॥
मन्दिर सुन्दर शाहजी बसे सदा सौभाग्य धनि।
परम मनस्वी यशस्वी श्रेष्ठ "तपस्वीदास" मुनि ॥ ४० ॥

जब से आपने श्रीतपस्वीदासजी से दीक्षाली उसी वर्ष में कार्तिक कृष्णा द्वादशी के दिन से श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज के जन्मोत्सव उपलक्ष में ५ दिन तक, श्रीमहावाणी समाज कीर्तन श्रीमद्भागवत पाठ, वैष्णव साधु सेवा पूर्वक प्रति वर्ष एक वृहदुत्सव बड़ेसमारोह के साथ किया करते हैं।

कुछ समय पश्चात् आपने व्रज के तीर्थ तथा अन्यान्य श्रीजगन्नाथधाम, श्रीसेतुबन्ध रामेश्वर, श्रीद्वारिका आदि तीर्थों की यात्रा की और अपने देश में आकर श्रीमद्भागवत सप्ताह पाठ किया जिसमें देशवासी सभा विद्वानों का यथोचित सत्कार सम्पन्न हुआ।

उत्सव समाप्त कर श्रीधाम वृन्दावन आए। यहां श्रीमान् राजर्षि श्रीवनमाली रायजी के द्रव्य से प्रकाशित अष्टीका सहित श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों का संशोधन किया।

फिर एक वर्ष के लिए तीर्थाटन करने पधारे और जिसमें श्रीबद्रीनारायण की यात्रा भी होगई, यह सम्वत् १९६९ का विवरण हुआ।

तीर्थयात्रा से आकर आपने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि अब हम श्रीव्रज वृन्दावनवास छोड़कर कहीं भी न जायेंगे। उसी समय श्रीमधुसूदनभट्टजी को श्रीमद्भागवत का तत्व बतलाकर उनकी एक सप्ताह कथा कानपुरवाली पाठशाला में ही कराई।

कुछ समय पहिले श्रीगोपाल मन्त्रराज का एक वृहत् अनुष्ठान किया था, जिसका प्रभाव यह हुआ कि श्रीगोपालजी महाराज ने स्वयं स्वप्नद्वारा दर्शन देकर इन्हें कृतार्थ किया।

आपकी अनन्य अलौकिक वाक्य सिद्धिका लक्ष्यकर अनुराग परिपूरित "जिनकी सेवा भोग रागसे लेकर सभी प्रकार श्रीविहारी जी में हो रही है उस" श्रेष्ठिवंशने आपसे वैष्णवोचित दीक्षा ग्रहण की।

जिनमें वर्तमान भक्तवृन्द सेठजानकीदासजी, श्रीलक्ष्मीचन्द्र जी, रामजीलालजी, माईधनजी, लालचन्द्रजी तथा परमानुरागी श्रीजयलालजी, श्रीहरगुणलालजी प्रभृति हैं।

इन भगवत् लाड़िलों को सदुपदेश देकर आपने कैमारबन के समीप "श्रीनिम्बार्क विद्यालय" इसलिए बनवाया कि-

"सर्वेषामेव दानानां विद्यादानं विशिष्यते,,

अर्थात् सब दानोंमें विद्यादान ही विशिष्ट है। एवं श्रीविहारी जी की सेवा के लिये पुष्पवाटिका तयार कराई। लोग दीक्षा का तत्व भूले जारहे हैं यह जान आपने "दीक्षातत्व प्रकाश" एक वृहद्ग्रन्थ बनाया और छपाकर प्रकाशित कराया।

श्रीनिम्बार्कभगवान् की बनाई हुई "वेदान्त कामधेनुः" भाषा टीका सहित छपाई, श्रीराधिकातत्व का पदार्थ है? इसका परिचय देने के लिये आपने विशेष खोजकरके "श्रीराधिकोपनिषत्" प्रकाशित कराई। आपकी ही कृपा से अद्भुत बहुत ग्रन्थों से संगृहीत एक "सार सङ्ग्रह" ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है और भी अनेक ग्रन्थ प्रकाशित कराये।

वर्तमान सम्वत् के पुनीत वैशाख मास में एक अनुपम सप्ताह यज्ञकिया जिसमें ११ विद्वान् तो केवल पाठ करते थे, एक अर्थ पाठ दोनों करते थे। इस यज्ञ में बहुत से साधुवैष्णव नित्य भगवत् प्रसाद लेते थे।

इसके उपरान्त भगवन्नाम सङ्कीर्तन अखण्ड यज्ञ प्रारम्भ किया और इस महामहोत्सव की यहां ही समाप्ति की गई : अन्तमें ब्राह्मण वैष्णव भोजन अधिक संख्या में होकर श्रीराधासर्वेश्वर की कृपा से आपका बहुत दिनका सङ्कल्प पूर्ण हुआ।

आपकी इतनी अवस्था का अनुभव इस वर्तमान ग्रन्थ द्वारा सब कोई जान सकते हैं आपने चरितार्थ करके दिखला दिया कि—

"सा विद्या तन्मतिर्यया"

अर्थात् विद्या वही है जिससे श्रीगोविन्द चरणारविन्द में मति लगे। श्रीमद्भागवत में कर्तव्य फल कहाहै।

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतोमखैः
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥ ५ ॥

अर्थात् सतयुग में ध्यान से, त्रेता में यज्ञोंसे, द्वापर में सेवा से, जो फल मिलता था कलिमें वही श्री केशव कीर्तन से प्राप्त होता है। यही विचार कर आपने यह श्रीभगवद्गुणोंसे परिपूर्ण "श्रीभगवन्नामचन्द्रिका" बनाई है॥ हमारा विचार बहुत दिन से था कि ऐसे महानुभावों का कुछ चरित्र सङ्कलन करें किन्तु आज श्रीकृष्णचैतन्यभगवान् की कृपा से सन्तमहिमा लिख कृतार्थ होने का अवसर प्राप्त होगया। दूसरी बात यह कि मेरे पितामह श्रीमन्माध्वगौड़ेश्वराचार्य श्रीवासुदेव गोस्वामीजी महाराज की आपसे अधिकतर मैत्री थी उस सम्बन्धसे आपभी मुझपर पौत्रवत् ही स्नेह करते हैं इस कारण आपके अनभीष्ट होने पर भी यह जीवनी मैंने स्वयं निज उत्कण्ठा से लिखकर भेट की है।

आपके चरित्र के विषय में और भी बहुत कथानक हैं किन्तु विस्तार भय से उन्हें न लिख कर संक्षेप से समाप्त करे देते हैं वैसे तो—

किं दुरापादनं तेषां पुंसा मुद्दामचेतसाम्
यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणो व्यसनात्ययः ॥

अर्थात् श्रीहरिभक्त क्या नहीं कर सकते हैं उनके लिए सब कुछ सरल है। जो कुछ अनुचित लिख गया हो उसे भक्त वैष्णव क्षमा करेंगे, आपके साथ तीर्थयात्रा एवं भगवत् सेवाओं में शारीरिक सहायता पं० दीपचन्द्रजी की स्तुत्य है। एवं श्रीराम-प्रसादजी प्रभृतियों की भी सेवा जाननी।

लेखक—

आचार्य यमुनावल्लभ गोस्वामी
श्रीराधामाधव मन्दिर
श्रीधाम वृन्दावन।

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

श्रीभगवन्नामचन्द्रिका ।

नत्वा नत्वा च पित्रोश्चरणसरसिजं हंसदेवं कुमारान् ।
देवर्षिं नारदं श्रीसहजसुकरुणं निम्बभानुं तथैव ॥
आचार्यान् वैष्णवांश्च हरिभजनरतान् श्री दुलारेप्रसादो ।
बोधार्थं बालकानां विरचति भगवन्नामतश्चन्द्रिकां वै ॥ १

भगवन्नामरूप्यर्थं वैष्णवानां हिताय वै ।
मया श्रीभगवन्नामचन्द्रिकेयं वितन्यते ॥ २ ॥

तत्रादौ साम्प्रतं भगवन्नामविषये ये आर्यम्मन्या आक्षेपं कुर्वन्ति तेषामनुवादवाक्यान्यपि यद्यपि पापावहानि तथाप्याक्षेपवाक्यमन्तरेणोत्तरवाक्यलेखनावसरोनाप्यते । अतोऽत्र तेषामाक्षेपवाक्यानि लिख्यन्ते ते हि वदन्ति, भगवन्नाम्नां माहात्म्यं कस्मिँश्चिद्वेदे नास्ति, तथाचावैदिकत्वान्न वयं तन्माहात्म्यं मन्यामहे, अन्यदपि कथयन्ति यथेदानीं कस्यचिद्देवदत्तादेः पुनःपुनर्नामग्रहणे कृते स देवदत्तादिस्तस्मै कुप्यति तथैव स ईश्वरस्तस्मै कुप्येदित्यादि

"भाषा टीका"

श्रीहरिचरण सरोजरज वन्दौं विमल निहारि।
जाके अतुल प्रभावते भाषा रचूं सुधारि ॥ १ ॥
श्री पद भगवन् पद लसै नामचन्द्रिका सन्त
ग्रन्थनाम निश्चित यही समझौ सन्त महन्त ॥ २ ॥
छटानाम टीका सही ताकी लिखूं बनाय।
श्रीहरि गुरु अरु साधुजन मोपै करौ सहाय ॥ ३ ॥
भाषा टीका कार हैं पण्डित रामप्रसाद।
भगवन्नाम लीजै सदा तजिकर वाद विवाद ॥ ४ ॥
स्वागतकरूं श्री "चन्द्रिके" प्रिय आइये प्रिय आइये।
शुभस्थान लीजै दर्श दीजै आनन्द रस बरसाइये ॥ ५ ॥

इससमय श्रीभगवन्नामके विषयमें बहुत से आर्यसमाजी भाई शङ्का करते हैं कि हमलोग श्रीभगवान के नामोंके माहात्म्यको वेदमें न होनेसे नहीं मानते हैं। दूसरी बात यह भी कहतेहैं कि जैसे इससमय साधारणपुरुषों का भी बारंबार नाम लेने से वे क्रोध करते हैं तैसेही बारंबार नाम लेने से ईश्वर सन्तुष्ट न होकर क्रोध करेंगे इस से बारंबार नाम लेनेकी आवश्यकता नहीं है।

तत्र पूर्वकृताक्षेपस्य सर्वथा मिथ्यात्वं वरीवर्त्ति यतः शुक्लयजुर्वेदसंहितायां द्वात्रिंशदध्याये भगवन्नामोच्चारणस्य माहात्म्यमुक्तम् ।

" नतस्य प्रतिमाअस्ति यस्य नाम महद्यशः "

यजु० सं ३२ अध्याय ।

अस्य मन्त्रस्योवटभाष्यम् । न तस्येति गायत्र्याद्विपदा-छन्दः न तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानभूतं किञ्चिद्वि-

यते यतोयस्य नाम महद्यश इत्येव वेदान्तविदः पठन्ति।

इति यजुर्वेदोक्तमन्त्रेण श्रीभगवन्नाममाहात्म्य मुक्तम ॥ ऋग्वेदस्य द्वितीयाष्टके द्वितीयाध्याये षड्विंशवर्गस्य तृतीयकण्डिकास्थमन्त्रः श्रीभगवन्नाम-माहात्म्यं वक्ति तथाहि—

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथाविद ।
ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्त्तन ॥
आस्य जानन्तोनामचिद्विविक्तन महस्ते ।
विष्णो सुमतिं भजामहे ॥

अस्य मन्त्रस्य सायणाचार्य्यकृतभाष्यम् ॥

हेस्तोतारः तमु तमेव विष्णुं पूर्व्यं पूर्वार्हमनादिसंसिद्धम ऋतस्य यज्ञस्य गर्भं गर्भभूतं यज्ञात्मनोत्पन्नमित्यर्थः। "यज्ञोवै विष्णु"रितिश्रुतेः। यद्वा ऋतस्योदकस्य गर्भं गर्भकारणम उदकोत्पादकमित्यर्थः। "अपएव ससर्जादा" वितिस्मृतेः ॥ एवम्भूतं विष्णुं यथाविद जानीथ तथा जनुषा जन्मना स्वतएव न केनचिद्बरलाभादिना पिपर्त्तन स्तोत्रादिना प्रीणयत यावदस्य माहात्म्यं जानीथ तावदित्यर्थः विदेर्लटि मध्यम वहुवचनम विदऋतस्येत्यत्र संहितायाम् "ऋत्यकः"

इति सूत्रेण प्रकृतिभावः ॥ किंच अस्य महानुभावस्य विष्णोर्नामचित् सर्वैर्नमनीयमभिधानं सार्वात्म्यप्रतिपादकं विष्णुरित्येतन्नाम जानन्तः पुरुषार्थप्रदमित्यधिगच्छन्तः आसमन्ताद्विविक्तन वदत सङ्कीर्तयत यद्वा नाम यज्ञनाम नमनं विष्णोरेव न सर्वेषां स्वर्गापवर्गसाधनायेत्याद्यात्मना द्रव्यदेवतात्मना वा परिणाममाजानन्तो यूयं विविक्तन ब्रूत स्तुत ॥ वचेर्लोटि जुहोत्यादित्वादपः श्लौ "बहुलं छन्दसि" इत्यभ्यासस्येत्वम पूर्ववत्तनादेशः ॥ इदानीं साक्षात्कृत्याह हे विष्णो सर्वात्मक महोमहतस्ते तव सुमतिं सुष्टुमतिं शोभात्मिकां बुद्धिं वा भजामहे सेवामहे वयं यजमानाः

अब हम देते हैं श्रीभगवन्नाम माहात्म्य नहीं है-इस शङ्का का उत्तर (शुक्ल यजुर्वेद संहिता के ३२ बत्तीसवें अध्याय में लिखे हुये के अनुसार देते हैं। जिस ईश्वर का नामही बड़े यशवाला है। इसी से ईश्वर के तुल्य कोई वस्तु संसार में विद्यमान नहीं है। और (यस्यनाम महद्यशः,) इस उत्तर वाक्य को छोड़कर (न तस्य-प्रतिमाअस्ति) इतने वाक्य को लेकर लिखते हैं कि उस ईश्वर की प्रतिमा (मूर्त्ति) नहीं है यह उनका इस प्रकार लिखना योग्य नहीं है क्योंकि सायणभाष्य और उव्वटभाष्य में भाष्यकार ने प्रतिमा शब्द का उपमा अर्थ कियाहै और यही अर्थ (न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते) इस श्रुतिसे आता है कि ईश्वर के तुल्य ही नहीं है तो ईश्वर से अधिक कौन हो सकता है। ऋग्वेद, २ दूसरा अष्टक २ दूसरा अध्याय, २६वें वर्गकी तीसरी कण्डिका का मन्त्रभी भगवान्के नाम के माहात्म्यको इस प्रकार कहैं हैं कि एक समय

यजमान प्रार्थना करने लगे कि हे स्तुति करने वाले सज्जनो ! अनादि कालसे सिद्ध और (यज्ञोवै विष्णुः) इस श्रुतिके वचन से यज्ञस्वरूप से उत्पन्न और (अपएव ससर्जादौ) इस स्मृतिसे जलकी उत्पत्ति करने वाले विष्णुको जिस प्रकार जानते हैं तैसेही जन्मसे लेकर कोई दूसरे देवताके वरदानके विना अपने आपही स्तोत्रादिकों से प्रसन्न करौ अर्थात् परमेश्वरका जितना माहात्म्य जानते हो उतना ही वर्णन कीजिये। और अत्यन्त प्रभाव वाले विष्णुका नाम चेतन और नमस्कार करने योग्यहै ऐसेही चार पदार्थोंका देने वाला परमेश्वर सब जीवों के अन्तर्यामी हैं इस बात की सूचना करने वाले विष्णु इस नामकाही सब प्रकार से कीर्त्तन करो। द्रव्य देवता स्वरूपसे परिणामको प्राप्तहुये विष्णुकोही जानते हुये आप लोग सब देवताओं के नामको छोड़कर विष्णु के नामका ही कीर्त्तन करौ। अब यजमान विष्णुका साक्षात्कार करके कहते हैं कि हे विष्णु ! हम आपकी सुन्दर बुद्धि की सेवा करते हैं।

एवमन्योऽपि नाममन्त्रस्यैव परमपुरुषार्थसाधनत्वद्योतकोमन्त्रोऽस्ति तथाहि ऋग्वेदे षष्ठेऽध्याये पञ्चविंशतिवर्गे ५ कण्डिकामन्त्रः

"प्रतत्ते अद्य शिपिविष्टनामार्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् तन्त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्यरजसः पराके"

सायणभाष्यम्। हे शिपिविष्ट रश्मिभिराविष्ट विष्णो ते तव तत्प्रसिद्धं विष्णुरिति प्रख्यातं नाम अर्यः स्वामी स्तुतीनां हविषां वा तथा वयुनानि ज्ञातव्यान्यर्थजातानि विद्वान् जानन्नहमद्येदानीं प्रशंसामि प्रकर्षेण स्तौमि यद्यप्युत्तमपुरुषोऽयं विधिशक्तिप्रतिबन्धकस्तथाऽपि मन्त्र

लिङ्गकल्पितो विधिः स्मृतीनां मूलमभिप्रेयते तवसं प्रवृद्धं तं त्वा त्वां विष्णुम् अतव्यान् अतवीयान् अवृद्धतरोऽल्पोऽहं गृणामि स्तौमि कीदृशं अस्य रजसो लोकस्य पराके दूरदेशे क्षयन्तं निवसन्तम् ॥

इसी प्रकार दूसरा ऋग्वेद ६ अध्याय २५वें वर्गकी ५वीं कण्डिका का (प्रतत्ते) इत्यादि मन्त्र भी नाम मन्त्रही को मोक्ष का साधन, एक भक्तके प्रसङ्गसे प्रकाशित करैहै कि हे दिव्य अनन्तकिरणों से परिपूर्ण विष्णु आपका विष्णुनाम जगत् प्रसिद्ध है। इसलिये स्तुति और हविर्भों का मालिक सब पदार्थों का ज्ञाता मैं अब नामकी प्रशंसा करूं हूं। और छोटे से छोटा मैं, बड़ों से बड़े इस लोकसे दूर देश में निवास करने वाले विष्णु आपकी स्तुति करूं हूं॥

एवं बहुभिर्वेदमन्त्रैः श्रीभगवन्नाममाहात्म्ये कथितेऽपि ये कथयन्ति श्रीभगवन्नाममाहात्म्यं वेदे नास्तीति ते प्रतारका एव ज्ञेयाः ॥ द्वितीयाक्षेपस्य सम्यगेव समाधानम् । तथाहि यथा प्रीत्यास्पदः पुत्रादिः पित्रादेः पुनः पुनराह्वानं करोति तथा पित्रादिः प्रसन्नोभवति तथैव भक्तवत्सलो भगवानपि भक्तकर्तृकस्वनामोच्चारणे कृते प्रसन्नोभवतीति विज्ञेयं मनीषिभिरित्यलं विस्तरेण वेदविहितत्वादेव भगवन्नाममाहात्म्यस्य " इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहये " दिति महाभारतोक्तवचनानुसारेण पुराणेषु बहुत्र श्रीभगवन्नाममाहात्म्यमुक्तम् तथाहि श्रीमद्भागवते तृतीयस्कन्धे श्रीकपिलदेवहूतिसं-

वादे त्रयस्त्रिंशदध्याये पञ्चमषष्ठश्लोकयोर्नाममाहात्म्य-मुक्तम्॥ "यन्नामधेयश्रवणानुकीर्त्तनाद्यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित्॥ श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नुदर्शनात्॥ अहोबत श्वपचोऽतोगरीयान्॥ यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यम्॥ तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्य्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ते ये॥ भा० ३ स्कं ३३ अ० ५। ६। श्लोकौ

ऐसें अनेक वेद मन्त्रों ने श्री भगवन्नाममाहात्म्य भले प्रकार कहा है तब भी जोजो महानुभाव श्री भगवन्नाममाहात्म्य को वेद में नहीं बतलाते हैं इससे उन बुद्धिमानों की बुद्धि को धन्य है जोकि वेद में रहते भी नहीं मानते। बारंबार नाम लेनेसे भगवान् रुष्ट होते हैं इस शङ्काका उत्तर सुनिये। जैसे लोक में प्रीति के पात्र बेटा नाती अपने अपने बाप दादोंको बेरबेर पुकारते हैं। तो भी रुष्ट न होकर वे प्रसन्न होते हैं। तैसेही भक्तप्रिय भगवान् भी अपने नामोच्चारण से प्रसन्न ही होते हैं। इतनी बात विद्वानों को जाननी चाहिये। बहुत विस्तार से क्या प्रयोजन है। श्री भगवन्नाममाहात्म्य वेद में कहा है इसीसे श्री वेदव्यासजी महाभारत में लिखें हैं कि भाष्यरूप इतिहास पुराणों से वेदकी व्याख्या करै। तात्पर्य यहहै कि जो वेदमें न होता तो पुराणों में कहांसे आता। श्रीभागवत-३ स्कन्ध-३३ वां अध्याय ५ वें ६ में श्लोकों में देवहूति कपिलदेव सें भगवन्नाममाहात्म्य को ऐसें कहेहैं कि हे भगवन् जो कभीभी आपके नामके श्रवण कीर्त्तन से आपके प्रणाम और स्मरण से चाण्डाल भी उसी क्षण यज्ञ के योग्य हो जाता है।अर्थात चाण्डाल की देह छोड़ दूसरे जन्म में सोमयज्ञ करने वालेकी तरह पूज्य बन जाता है। तो आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गई यह कोई आश्चर्य नहीं है आश्चर्य तो आपके नाम के माहात्म्य का है कि जिस चाण्डालकी जिह्वाके आगे में आपका नाम वर्त्तमान

है इसीसे-यह श्रेष्ठ है। और जो आपके नामको रटें हैं। वे सबसे श्रेष्ठ हैं आपके नामके भीतर ही तप आदि सब हैं तो विना किये भी वे तप-होम-तीर्थस्नान-वेदपाठ करचुके हैं इसी बातको श्रीनिम्बार्क संप्रदाय के अन्तर्गत श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी ने एक दोहामें कहा हैं कि-नामलियौ जिन सब कियौ योग यज्ञ आचार, जप तप तीरथ परशुराम सबहि नामकी लार ॥

तथा बृहन्नारदीये " हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ॥ कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥ तथा भा० स्कं ६। २। ३। अध्याय अजामिलोपाख्याने विष्णुदूतैरुक्तम् " अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि यद् व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ।१। एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम् । यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ॥२॥ स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग्ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ स्त्रीराजपितृगोहन्ता येच पातकिनोऽपरे ॥३॥ सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ॥ नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषयामतिः ॥४॥ साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ॥ वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥ ५ ॥ पतितः स्खलितोभग्नः संदष्टस्तप्तआहतः ॥ हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम् " ॥६॥ अज्ञानादथवाज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् । संकीर्तितमघं पुंसोदहेदेधो यथाऽनलः ॥७॥ वैष्णवे यमः स्वदूतं प्रति "स्वपुरुषमभि-

वीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ॥ परिहर भगवत्कथाप्रमत्तान् प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवा नाम ।" भा० ६ स्कं० ३ अ० जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ॥ कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदाऽपि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥८॥ तथा भा० १२ स्कं० ३अ० " यन्नामधेयं म्रियमाणआतुरः पतन् स्खळन् वा विवशोगृणन् पुमान् ॥ विमुक्तकर्म्मार्गलउत्तमां गतिं प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः " ॥१॥ तत्रैवोक्तम् " कळेर्दोषनिधे राजन्नस्तिह्येको महान् गुणः । कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥" तथा श्रीभगवद्व्यासपादानां वचनं पद्मावल्याम् " विष्णोर्नामैव पुंसः शमलमपहरत् पुण्यमुत्पादयच्च ब्रह्मादिस्थानभोगाद्विरतिमथ श्रीगुरुश्रीपदद्वन्द्वभक्तिम् ॥ तत्त्वज्ञानं च विष्णोरिह मृतिजननभ्रान्तिवीजं च दग्ध्वा संपूर्णानन्दबोधे महति च पुरुषं स्थापयित्वा निवृत्तम् " तथा पाद्मे पार्वतीं प्रति श्रीशिववाक्यम् ॥ " स्मर्त्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्त्तव्योन जातुचित् । सर्वे विधिनिषेधास्युरेतयोरेव किङ्कराः " ॥१॥ तथा भागवते १२ स्कं० अ० ३ कृते "यद्ध्यायतोविष्णुं त्रेतायां यजतोमखैः

द्वापरे परिचर्य्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात्" ॥ तथा पाद्मे पार्वतीं प्रति श्रीशिववाक्यम् ॥ " रामरामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ॥ सहस्रनामभिस्तुल्यं रामनाम वरानने " तथा तत्रैव " नामचिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः ॥ पूर्णःशुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नाम-नामिनोः ॥१॥ अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद्ग्राह्यमिन्द्रियैः ॥ स्फुरति स्वयमेवैतज्जिह्वादौ श्रवणे मुखे ॥२॥ जपतः सर्ववेदांश्च सर्वमन्त्रांश्च पार्वति ॥ तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं कृष्णनाम्नैव लभ्यते ॥३॥ तथा रासोल्लासतन्त्रे शिववाक्यम् " राधानामसुधायुक्तं कृष्णनामरसायनम् ॥ यः पठेत्प्रातरुत्थाय व्याधिभिस्स न बाध्यते १ येनोच्चैरुच्यतेरागैराधाकृष्णपदद्वयम् ॥ वामदक्षिणतस्तस्य राधाकृष्णोऽनुधावति ॥२॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो-राधाकृष्णेति कीर्त्तयन् ॥ सुखेन पुण्यं संपत्तिं लभते वा सदैश्वरः ॥३॥ श्रीपूर्वं जयपूर्वं वा राधाकृष्णेति कीर्त्तयन् । कल्पनामसहस्राणां फलमाप्नोति मानवः ४ राधाकृष्णमहामन्त्रं यो जपेद्भक्तिपूर्वकम् ॥ अन्तकाले भवेत्तस्य राधाकृष्णेति संस्मृतिः ॥५॥ अतएव महाबाणयाग जयराधे जयराधे राधे जयराधे जयश्रीराधे इत्याद्युक्तम् ॥ तथैवोक्तं ब्रह्मसंहितायाम् ॥ " ईश्वरः

परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् " ॥४॥ सामोपनिषदि चोक्तम् " कृष्णाय देवकीनन्दनायेति "

तैसेही बृहन्नारदीयपुराण में कहा है कि कलियुगमें केवल हरिका नामही आधार है और कोई गति नहीं है तीनबार कहने का यह प्रयोजन है कि कलियुग में हरिका नामही साधन है और कोई साधन ठीक नहीं बन सकते हैं। तैसेही भा० ६ स्कं० २ अ० तथा ३ अ० श्री अजामिल के चरित्र में श्रीविष्णु दूतों ने कहा है कि इस अजामिल ने अनन्त जन्मों के पापों का प्रायश्चित्त कर लिया क्योंकि मृत्युके वश ही मोक्षदायक हरिका नाम लिया है ? जब चार अक्षरका, अरे बेटा नारायण तुम आओ यह संकेत नाम लिया तबही इस पापी के पापों का प्रायश्चित्त हो गया चोर मदिरा पीने वाला, मित्रका द्रोही ब्राह्मण का मारने वाला, गुरुस्त्रीगामी, स्त्री, राजा, पिता और गौका मारने वाला और भी अनेक तरहके पापी क्यों न होंय विष्णुके नामका उच्चारणही सब पापियोंके पापका अच्छा प्रायश्चित्त है। जिस नामके उच्चारणसे यह भक्त हमारा है ऐसी भगवानकी बुद्धि होती है ॥४॥ वादी शङ्का करे है कि अजामिल ने बेटा का नाम लिया भगवान् का नाम तो नहीं लिया तब फिर क्यों पापोंकी निवृत्ति हुई इसका उत्तर यह है कि बेटा नातीका नारायण दामोदर—यह संकेत नाम, हे विख्यात कीर्त्तिवाले कृष्ण रासोत्सवमें तुम्हारी मर्यादा कैसी ऐसे हँसी में कहा नाम गीतकी ध्वनि की पूर्त्तिके लिये हरि, नाम, जो अनेक ब्रह्माण्डोंको धारण करे है तब कृष्णने गोवर्द्धन उठाने में क्या कोई परिश्रम किया है अर्थात् नहीं किया है और मेरे भाग्य में दुःख लिखा है तो हरि क्या कर सकते हैं ऐसा कोई भक्त कहता है। और बिना यत्नके ही निकला नाम, ऐसे सबही नाम पापों के नाश करने वाले हैं इस मर्म को शास्त्र के रसिकजन जानते हैं ५। महल से गिरा, मार्गमें रपटा, शरीर टूटा हुआ, सांपसे डसा हुआ, ज्वरसे तपा हुआ और डंडासे मारा गया भी जीव मात्र अवश होकर भी भगवान् का नाम कहै है वह नरकादि दुःखों को नहीं भोगता है ॥६॥

सब पापों का प्रायश्चित्त यह है कि जैसे भूल से किसी बालक करके लकड़ियों की राशि में फेंके हुए अग्नि काठको जलाही देते हैं तैसेही जानकर अथवा बिना जाने लिया गया विष्णु का नाम लेने वाले पुरुष के पापों को भस्म करही देता है ७॥ विष्णुपुराण में यमराज हाथ में फांस लिये हुए अपने दूत को देख उसके कानमें कहतेहैं कि हे दूत तुम मधुसूदन के सरणागत भक्तों को दूरही से छोड़ देना क्यों कि हम और जीवों के स्वामी हैं हरिभक्तों के नहीं हैं ८। भा० ६वां स्कन्ध ३ तीसरे अध्याय के श्लोकसे भी यही स्पष्ट होता है कि जिन महानुभावों की जिह्वा कभीभी श्रीभगवान् के गुण और नाम को नहीं कहती है और जिनका चित्त कभीभी श्रीभगवान् के चरणारविन्दका स्मरण नहीं करता है और जिनका शिर कभीभी कृष्ण के लिये नहीं झुकता है इसी प्रकार जिन्होंने विष्णु सम्बन्धी भजनादिक कोई भी कर्म नहीं किये हैं उन दुष्टों को हमारे सन्मुख दण्ड देने के लिये लाइये ९॥ भा० १२ स्कं० ३ अ० मरती भयी, घबड़ाया हुआ रोगी, गिरता हुआ, रपटता हुआ, इसमें अवश होकर भी पुरुष जिस भगवान् के नामको लेते ही कर्मरूपी प्रतिबन्धकों से छूटा हुआ वैकुण्ठ लोकादिकों को प्राप्त होता है तौभी सूत जी कहते हैं कि ऐसे परमदयालु भगवान् का पूजन दोषवश से कलियुग में पुरुष नहीं करेंगे १०॥ उसी प्रकरण में और भी कहा है कि हे राजन् दोषों की खान कलियुग का एक बड़ा गुण यह है कि कृष्णके कीर्त्तन से ही सबके सङ्गों से मुक्त होकर भक्त भगवान् को प्राप्त होगा॥ ११। तैसेही पद्मावली में पूज्यपाद श्रीव्यासदेव जी का वचन है श्री विष्णु का नाम ही भक्त पुरुष के पाप को नष्ट करता हुआ पुण्य को उत्पन्न करावै है और ब्रह्मादिकों के सत्य लोकादि स्थानोंके भोगोंमें वैराग्य कराय श्री गुरुजी के चरण युगल की भक्ति पूर्वक श्री विष्णु के तत्त्व का अनुभव करावै है तिसके पीछे संसार में जीवों के सङ्ग अनादि कालसे जन्म लेना मरना रूप लगी हुई भ्रान्तिके अज्ञानरूप बीज को जलाय परिपूर्ण आनन्द स्वरूप और ज्ञानस्वरूप ईश्वर में भक्तको लगाकर निवृत्त होता है॥ १२॥ तैसेही पद्मपुराणमें श्रीमहादेवजी पार्वतीजी से कहे हैं कि हे पार्वति भक्त करके श्रीविष्णु ही दिनरात स्मरण करने योग्य हैं कभीभी भूलने योग्य नहीं हैं विष्णु के

स्मरण और विस्मरण के ही सम्पूर्ण विधि और सम्पूर्ण निषेध किङ्कर हैं क्योंकि विष्णु के स्मरण करनेसे ही नहीं किये हुए भी सन्ध्योपासनादि कर्म उस भक्त के होगये और विष्णु का स्मरण न करने से ही नहीं किये हुए भी परस्त्रीगमनादि सब निषिद्ध कर्म उस भक्त के किये हुए की तरह हो जाते हैं॥ १३॥ तैसेही भा० १२ स्कं० ३ अ० में कहा है कि सत्ययुग में विष्णु का ध्यान करते हुए पुरुष को जो फल होता है॥ त्रेतायुग में यज्ञों द्वारा यज्ञपुरुष भगवान् का पूजन करते हुए पुरुष को जो फल मिलता है और द्वापर में विष्णुकी सेवा में जो फल होता है वे सब फल कलियुग में हरिके कीर्त्तनमात्र से ही होते हैं इससे यही सब पदार्थों का सिद्ध करने वाला सहज उपाय है॥ १४॥ तैसेही पद्मपुराण में श्री महादेवजी पार्वतीजी से कहते हैं कि श्रेष्ठमुखि पार्वती जू एक रामनाम ही सहस्रनामों के तुल्य है इसी से हम, राम, राम, राम, ऐसें वारंवार रटते हुए योगियों के मनको रमण कराने वाले श्रीरामनाम में रमण करते हैं॥ श्रीरामनाम के माहात्म्य को पूज्यपाद महात्मा श्री तुलसीदासजी ने अपनी बनाई हुई रामायण के बालकांड में कहा है कि—

दोहा— निर्गुण ते इह भांति बड़, नाम प्रभाव अपार।
कहउं नाम बड़ रामते, निज विचार अनुसार॥

राम भक्त हित नरतनु धारी। सहि संकट किय साधु सुखारी॥
नाम सप्रेम जपत अनयासा। भक्त होहिं मुद मंगल वासा॥
राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति उधारी॥
ऋषिहित राम सुकेतु सुताकी। सहित सेन सुत कीन्ह बिबाकी॥
सहित दोष दुख दास दुराशा। दलइ नाम जिमि रवि निशिनाशा॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू॥
दण्डक वन प्रभु कीन्ह सुहावन। जनमन अमित नाम किय पावन॥
निशिचर निकर दलेउ रघुनन्दन। नाम सकल कलि कलुष निकन्दन॥

———

दोहा– शबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, वेदविदित गुणगाथ॥

राम सुकंठ विभीषण दोऊ। राखे शरण जान सब कोऊ॥
नाम अनेक गरीब निवाजे। लोक वेद बर बिरद बिराजे॥
राम भालु कपि कटक बटोरा। सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा॥
नाम लेत भव सिन्धु सुखाहीं। करहु विचार सुजन मन माहीं॥
राम सकुल रण रावण मारा। सीय सहित निजपुर पगुधारा॥
राजा राम अवध रजधानी। गावत गुण सुर मुनिवर बानी॥
सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोहदल जीती॥
फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नाहिं सपने॥

इत्यादि।

श्री पद्मपुराणही में महादेव पार्वतीजी सें कहते हैं कि नाम और नामी इन दोनों के अभेद से जैसे नामीकृष्ण, पूर्ण, शुद्ध, नित्य मुक्त और चैतन्य रस स्वरूप शरीर वाले हैं तैसेही श्री कृष्णनाम पूर्ण, शुद्ध, नित्यमुक्त और चैतन्य रस स्वरूप हैं। जैसे भगवान् स्वप्रकाश हैं अर्थात् जीवों के ऊपर दयाकर जगत् में अपनी इच्छा हीसे अवतार धारण कर प्रकाश को प्राप्त होते हैं ऐसे ही भगवन्नाम भी स्वप्रकाश है और जीवों के ऊपर कृपाकर अपने आपही भक्तोंकी जिह्वा, कर्णेन्द्रिय और मुखमें प्रकाशको प्राप्त होते हैं। इसीसे कहा है कि कृष्णनामादि प्राकृत इन्द्रियों के विषय नहीं होते हैं महादेव जी कहते हैं कि हे पार्वति सर्ववेद और सम्पूर्ण मन्त्रों के जप करते हुए पुरुषको जो पुण्य मिलता है तिससेभी करोड़ गुना पुण्य श्रीकृष्ण के एक नामसे ही प्राप्त होता है तैसेही रासेश्वर तन्त्र में शिवजी का वाक्य है कि जो पुरुष प्रातःकाल उठकर राधानामरूप सुधासे युक्त रसायन रूप कृष्णनाम का पाठ करैगा वह पुरुष संसार की व्याधियों से पीड़ित नहीं होगा। जो पुरुष प्रीति पूर्वक ऊंचे स्वर से राधा और कृष्ण इन दोनों पदका उच्चारण करते हैं उनके दाहिनी

और बाईं ओर श्रीराधाकृष्ण विराजते हैं। जो वैष्णव श्रीराधाकृष्ण कहै हैं वह वैष्णव सब पापों से छूटकर सुखसे पुण्य और संपत्तिको पाता है। जो मनुष्य श्रीपद अथवा जयपद लगाय कर राधाकृष्ण नाम लेता है वह पुरुष कृष्णनाम से अन्य भगवान के करोड़ों नामों के फलको पाता है जो भक्त भक्ति सें राधाकृष्ण महामन्त्र को जपै है उसको अन्तकाल मैं राधाकृष्ण की याद अवश्य आती है। इसीसे महा-वाणीमें (जयराधे जयराधे राधे जयराधे जय श्रीराधे। जय कृष्ण २ जय कृष्ण २ कृष्ण २ जय कृष्ण २ जय श्रीकृष्ण २) इस प्रकार राधाकृष्ण महामन्त्र का स्वरूप कहा है। तैसेही श्रीकृष्ण का महत्त्व ब्रह्मसंहिता में कहा है कि ईश्वर, परम, सत्‌चित् आनन्द स्वरूप विग्रहवाले, जिनका आदि नहीं और आप सबसें पहिले विराजमान हैं, गौ अथवा वेद लक्षणा वाणी को प्राप्त होने से गोविन्द और सम्पूर्ण ब्रह्मादि कारणों के भी कारण। श्रीकृष्णचन्द्र हैं सामोपनिषद् में भी कहा है कि देवकीके नन्दन श्रीकृष्णके लिये नमस्कार है।

सर्वेषां भगवन्नाम्नां मध्ये सर्वावतारावतारिपूर्ण-तमश्रीकृष्णनाम्नएव प्राधान्यं तथैवोक्तं प्रभासखण्डे श्रीनारदकुशध्वजसम्वादे श्रीभगवतेव " नाम्नां मुख्य-तमं नाम कृष्णाख्यं मे परंतपे " ति ॥ अतएव ब्रह्मा-ण्डपुराणे श्रीकृष्णनामामृतस्तोत्रे 'सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलम् ॥ एकावृत्त्या तु कृष्णस्य नामैकं तत्प्रयच्छति ॥ अत्र प्राप्तावसरत्वेन कृष्णश-ब्दार्थोनिरूप्यते तथाहि कृष्णशब्दोद्विविधः सखण्डा-र्थोऽखण्डार्थश्चेति तत्र व्याकरणमुखेन व्युत्पत्तिं दर्श-यन् विविच्यते चतुष्पदमिदं वाक्यम्। कृशब्दस्यात्र

तन्त्रपाठः कृ कृष् ण् अ चत्वारि पदानि तत्र डुकृञ् करणे कृष विलेखने इत्यनयोः क्विप्प्रत्ययोगे छान्दसत्वात्तुगागमाभावे कृइति निष्पद्यते तस्यादर्शने कृष्शब्दोव्युत्पन्नः। सच कर्तृसंहर्तृवाचकः' वस्तुलाभकरोऽस्त्विति वचनान्मोक्षलाभकरो णशब्दः। अवरक्षणे इत्यस्माद्धातोः क्विप्प्रत्यये छान्दसत्वादूठोऽभावे अइत्यस्यावशेषत्वाद्रक्षकत्वसिद्धिः एवंच जगत्कर्तृत्वं मोक्षदातृत्वं जगद्रक्षकत्वमिति कृष्णशब्दार्थोनिष्पन्नः॥ तथाच श्रुतिः "यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति संसारबन्धस्थितिमोक्षहेतुः" जन्माद्यस्य यतः ब्र० सू० प्र० अ० प्र० पा० सू० २ "अहं सर्वस्य प्रभवोमत्तः सर्वं प्रवर्त्तते" इत्यादि श्रुतिसूत्रस्मृतिभ्यः॥ आर्षव्युत्पत्तिपक्षेच "कृषिर्भूवाचकः शब्दोणश्च निर्वृतिवाचकः॥ तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते" सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" त्यादि श्रुत्युक्तद्वितीयलक्षणसिद्धिः॥ अखण्डार्थस्तु श्रुत्युक्तसच्चिदानन्दरूपः श्रीकृष्ण इति "सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकारिणे" इतिश्रुतेः तथाच तमालश्यामलत्विषि यशोदास्तनन्धये परब्रह्मणि कृष्णशब्दस्य रूढिरिति भगवन्नामकौमुदीकारैर्लक्ष्मी-

धरमनीषिभिरप्युक्तम् । तैरेव कृष्णनामात्मकमन्त्रस्य दीक्षादिविनैव मोक्षपर्य्यन्तफलदत्वमुक्तम् तथाहि । आकृष्टिः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसामाचाण्डालमसूकलोकसुलभोवश्यश्च मोक्षश्रियः । नोदीक्षां नच दक्षिणां नच पुरश्चर्य्यां मनागीक्षते मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति श्रीकृष्णनामात्मकः ॥

सब भगवान् के नामों के बीच में सब अवतारों के अवतारी अर्थात् जिनसे सब अवतार प्रगट होते हैं अतिशय करिके पूर्ण जो श्रीकृष्ण उनका जो कृष्ण नाम उसी की प्रधानता है तैसेही श्रीभगवान् ने "स्कन्दपुराण" के प्रभासखण्ड में श्रीनारद और कुशध्वज के सम्वाद में कहा है कि हे राजन्— हमारे सब नामों में कृष्ण नामही अत्यन्त मुख्य है। इसी से "ब्रह्माण्डपुराण" के श्रीकृष्णनामामृतस्तोत्र में कहा है कि कृष्ण नाम से दूसरे पवित्र भगवान् के हजारों नामों का तीनवार के पाठ से जो फल मिलता है वह फल कृष्ण इस नाम के एकवारही लेने से मिलता है। यहाँ पर "कृष्ण" नाम के विचार के प्रसङ्ग में कृष्ण शब्द के अर्थ को निरूपण करते हैं। उसको दिखाते हैं कि कृष्ण शब्द दो प्रकार का है एक सखण्डार्थ और दूसरा अखण्डार्थ है। सखण्डार्थ और अखण्डार्थ इन दोनों में से पहिले व्याकरणकी रीति से सखण्डार्थ कृष्ण शब्द की व्याख्या करते हैं। कृष्ण यह वाक्य चार पद का है क्योंकि कृष्ण शब्द में कृ शब्द का तन्त्र से पाठ पड़ा है इसी से कृ-कृष्-ण्-अ-चार पद सिद्ध हुए। कृ-कृष्-इन दोनों पद की सिद्धि क्रम से डुकृञ् करणे-कृष् विलेखने इन धातुओं से क्विप् प्रत्यय करने पर और वैदिक होने से कृ धातु को तुक् का आगम न होने से होती है। तुक् के अभाव में कृ शब्द सिद्ध हुआ और उसका दर्शन न होने से केवल कृष् शब्द रहगया और कृष् शब्द के ही जगत् का कर्त्ता और जगत् का संहर्ता दो अर्थ हुए। वस्तु का लाभ करने वाला णकार है इस वचन से

मोक्ष का लाभ करने वाला णकार शब्द है। अब रक्षणे इस धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर और वैदिक होने से ऊठ् का अभाव वकार का लोप होनेसे अकार मात्र शेष रहा। और जगत्के रक्षक यह अर्थ भी सिद्ध हुआ। इस प्रकार कृ से जगत् के कर्त्ता कृष् से जगत् के संहार करने वाले णकार से मोक्ष के दाता और अकार से जगत् के रक्षक इस प्रकार कृष्ण शब्द का अर्थ सिद्ध हुआ। तैसेही श्रुति है। जिस परमेश्वर से सब जीव प्रगट होते हैं और प्रगट होकर जिनसे सुरक्षित होते हैं और जिनमें मोक्ष को प्राप्त होते हैं और प्रलय कालमें उनही में लीन होते हैं। परमेश्वर संसार के बन्धन पालन और मोक्ष के हेतु हैं।

ब्रह्मसूत्र १ पहिला अध्याय १ पहिला पाद के २ दूसरे सूत्र में कहा है कि—

इस संसार का जन्म, पालन, और संहार जिनसे होते हैं वह परमेश्वर हैं और श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि—हे अर्जुन! हम सबके कारण हैं और हमही से सब प्रगट होता है इस प्रकार अनेक श्रुति सूत्र और स्मृतियों से पहिले चार अर्थ किये हैं। पूज्यपाद श्रीव्यासदेवजी ने महाभारत में कृष्ण शब्द की व्याख्या इस प्रमार करी है कि— कृष् शब्द का कर्षण और णकार का सुख अर्थ है। इन दोनों के मिलने से कर्षण और सुखरूप के आश्रय परब्रह्म श्रीकृष्ण कहे जाते हैं सत्य स्वरूप ज्ञान स्वरूप और अनन्त स्वरूप ब्रह्म श्रीकृष्ण हैं इत्यादि श्रुति से आर्षव्युत्पत्ति पक्षमें अर्थात् ऋषिप्रोक्त जो कृष्ण शब्द का अर्थ उसकी सिद्धि हुई। और सत्-चित् आनन्द स्वरूप विना परिश्रम के ही जगत्की सृष्टादि लीलाओं के करने वाले कृष्ण के लिये नमस्कार है इस श्रुति से कथित सत्-चित् आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण हैं यह अखण्डार्थ हुआ। तैसेही तमाल वृक्ष के समान कान्ति से युक्त श्रीयशोदा के स्तन पान करने वाले परब्रह्म में श्रीकृष्ण शब्द की प्रसिद्धि है ऐसे पूज्यपाद लक्ष्मीधरजी ने भगवन्नामकौमुदी में भी कहा है। श्रीलक्ष्मीधरजी ने ही यह भी कहा है कि कृष्ण नाम दीक्षादि कर्मों के विनाही मोक्ष पर्य्यन्त फल को देता है इसको

स्पष्ट दिखाते हैं कि शुद्धचित्त महात्माओं का आकर्षण करता हुआ पापों का नाशक गूंगेन को छोड़कर चाण्डाल से लेकर सब जनोंको सुलभ और मोक्ष संपत्ति का दाता कृष्ण नामही मन्त्र दीक्षा दक्षिणा और अनुष्ठानके बिना रसना द्वारा लेतेही सम्पूर्ण फलों को देता है।

इतोहेतोः श्रीकृष्णस्सर्वावतारावतारी पूर्णतमश्च
तथा भा० द० स्कं० अ०१४ ब्रह्मस्तुतौ

"नारायणोऽङ्गंनरभूजलायनात्" इति " नराज्जातानिं तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः ॥ तस्य तान्ययनं पूर्वं तेन नारायणःस्मृत" इति योलक्षितोनारायणस्सतवाङ्गं नत्वङ्गीत्यर्थः॥ तथैवोक्तं ब्रह्मसंहितायाम् ॥ " रामादि मूर्त्तिषु कलानियमेन तिष्ठन् नानावतारमकरोद् भुवनेषु किन्तु । कृष्णः स्वयं समभवत्परमःपुमान्यो गोविन्द-मादिपुरुषं तमहं भजामि " ॥ इति ॥

यद्यपि सर्वेऽपि भगवदवतारा पूर्णाएव तथाप्यै-श्वर्य्यप्राकट्याप्राकट्याभ्यां परत्वमवरत्वम् तथैवोक्तं श्रीभागवते—'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तुभगवान् स्वयम्' किञ्चायंश्रीकृष्णोऽवतारी अस्मादेव सर्वेऽवतारा भवन्तीति गीतगोविन्दे जयदेवेनाप्युक्तम् " दशाकृति कृतेकृष्णाय तुभ्यं नमः" इति॥ श्रीगीतोपनिषदि स्वमुखे

नाप्युक्तम । "ब्रह्मणोहि प्रतिष्ठाऽहमिति प्रतिष्ठाशब्द श्चात्राश्रयवाचक,,

इस हेतु से सम्पूर्ण अवतारों के अवतारी और पूर्णतम श्रीकृष्णही हैं इस सिद्धान्त को श्रीभागवत दशमस्कन्ध का १४ चौदहवां अध्याय के ब्रह्मस्तुति के पद्य से दिखाते हैं कि नर से उत्पन्न जलरूप आश्रय होने से नारायण अङ्ग हैं विवेकी पुरुष नरसे उत्पन्न हुए तत्त्वों को नार जानते हैं प्रलय काल में जल तत्त्वही में शयन करते हैं इससे नारायण कहे जाते हैं इस स्तुति से दिखाये गये नारायण आपके अङ्ग हैं अङ्गी नहीं है अङ्गी तो आपही हैं। तैसेही ब्रह्मसंहिता में ब्रह्माजी कहते हैं कि हम उनआदि पुरुष श्रीगोविन्दजी का भजन करते हैं कि जो राम नृसिंहादि मूर्त्तियोंमें कलाओंके नियम करकें विराजमान होते हुये भुवनों में नाना प्रकार के अवतारों को लेते हैं लेकिन परम पुरुष जो श्री कृष्णचन्द्र हैं वे तो स्वयं प्रकट हुए हैं यद्यपि सम्पूर्ण भगवान के अवतार पूर्ण ही हैं तौभी जिन अवतारों में विशेष करिके प्रगट ऐश्वर्य देखने में आवे हैं उन्हो को बड़े कहते हैं और जिन्हों में विशेष करिके प्रगट ऐश्वर्य देखने में नहीं आवे है उन्हों को छोटे कहते हैं बस इतनाही भेदहै वास्तविक भेद नहीं है। तैसेही श्री भागवत में कहाहै कि— पहले कहे हुए मत्स्यादिक अवतार और चकार से अन्य अवतार आद्य पुरुष भगवान के कोई अंशावतार हैं और कोई कलावतार हैं लेकिन कृष्ण तो स्वयं भगवान हैं और भी सुनिये—यह श्री कृष्ण अवतारी हैं और इनही से सम्पूर्ण अवतार होते हैं ऐसे जयदेव कवि ने भी श्री गीतगोविन्द में कहा है कि दश अवतारों को धारण करने वाले कृष्ण आपके लिये नमस्कार है श्री गीतोपनिषद में अपने मुखारविन्द से श्रीकृष्ण कहते हैं कि ब्रह्म के जो अपहतपाप्मत्वादि धर्म हैं उनके आश्रय हम ही हैं और प्रतिष्ठा शब्द का अर्थ यहां पर आश्रय किया गया है।

———

अस्य श्रीकृष्णस्य वामभागे स्थिता श्रीराधिका विराजते " अङ्के तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगा " मित्याद्याचार्य्योक्तेः । चर्चितं च नवगोपबालया प्रेमभक्तिरसशालिमालये " ति निर्विशेषसविशेषस्तोत्रेऽप्युक्तम् । ऋग्वेदपरिशिष्टे " राधया माधवोदेवो माधवेनैव राधिका विभ्राजन्ते जनेष्वा ॥ अस्याः श्रुतेश्चायमर्थः ॥ राधयति वशीकरोति कृष्णमिति राधा यद्वा राध्यते आराध्यते भक्तजनैरिति राधा यद्वा राध्यते आराध्यते श्रीकृष्णेनेति राधा यद्वा राधयति साधयति सर्वं कार्य्यं स्वभक्तानामितिराधा यद्वाराधयति आराधयति कृष्णमिति राधा तया राधया सह माधवः श्रीकृष्णोदेवः सन् विभ्राजते दीव्यति नित्यं क्रीड़तीति तथा सः । नित्यविहारीत्यर्थः ॥ " अनयाऽऽराधितोनूनं भगवान् हरिरीश्वर " इतिदशमोक्तेः यद्वा हेतौतृतीया फलसाधनयोग्यः पदार्थोहेतुरिति शाब्दिकाः । ततश्च राधया हेतुभूतया माधवः । भायास्तस्याएव धवइतिसैव तन्माधवतायां हेतुः । तथा देवोऽपि सैव तस्य नित्यविहारित्वेहेतुरित्यर्थः ॥ यद्वा इत्थम्भूतलक्षणे तृतीया राधयोपलक्षितोमाधवः राधाज्ञाप्यमाधवत्वविशिष्टइत्यर्थः यद्वा माधवः राधया सहैव देवः परमसेव्यः । अन्यथा

दोषश्रवणात् । यथाऽऽह सम्मोहनतन्त्रे " गौरतेजो-विना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत् ॥ जपेद्वा ध्यायते वापि सभवेत्पातकी शिवे सब्रह्महा सुरापीच स्वर्णस्तेयीच पञ्चमः ॥ एतैर्दोषैर्विलिप्येत तेजोभेदान्महेश्वरि । तस्माज्ज्योतिरभूद्द्वेधा राधामाधवरूपकमिति । तथै वोक्तं श्रीराधासुधानिधौ । प्रेम्णः सन्मधुरोज्ज्वलस्य हृदयं शृङ्गारलीलाकलावैचित्रीपरमावधिर्भगवतः पूज्यैव कापीशता । ईशानी च शची महासुखतनुः शक्तिः स्वतन्त्रा परा श्रीवृन्दावननाथपट्टमहिषी राधैव सेव्या मम ॥ १ ॥ राधादास्यमपास्य यः प्रयतते गोविन्द-सङ्गाशया सोऽयं पूर्णसुधारुचेः परिचयं राकां विना काङ्क्षति । किंच श्यामप्रवाहवारिलहरीवीजं न ये तां विदुस्ते प्राप्यापि महामृताम्बुधिमहो विन्दुं परं प्राप्नुयुः ॥ २ ॥ अथ माधवेनैव राधिकेति । अत्रदेव-इत्यस्यानुषङ्गः ततश्च माधवेनैव राधिका देवीति लिङ्ग-विपरिणामोऽपि । उभयत्र विभ्राजते इतिवचनविपरि-णामोऽपि । यद्वा नानारूपैरितिशेषः । जनेषु तत्तदावि-र्भावभक्तेषु नैवं विपरिणामोऽपि । अत्र चान्वयसौकर्य्या-य यथापदमुपादेयम् । यदाऽऽहवामनः । " येनाप्नोति परां भूमिं पदगुप्तेऽभिधेयता । तदव्ययमुपादेयं पद-

व्यारव्याविशारदै" रिति। ततश्च यथा माधवोदेवोराधया आसर्वतोविभ्राजते तथा राधिका देवी माधवेनैवेत्यर्थः अत्राधपादे सहार्थतृतीयया प्रतीतमप्राधान्यं द्वितीय-पादगतमेवपदं व्यावर्त्तयति। नन्वपूर्वमिवोच्यते बहुभि-रन्यथामननात् तत्राह जनेष्विति परमभक्तेष्वित्यर्थः " सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जना " इति श्रीतृतीये कपिलोक्तेर्य एवं विदस्तएव जना नान्य इति भावः ॥

श्रीकृष्णचन्द्र के वाम भाग में श्रीराधिका जी विराजती हैं क्योंकि " अंगेतु वामे वृषभानुजां मुदा " इत्यादि श्लोक से श्रीआद्याचार्य श्रीनिम्बार्क भगवान् कहेहैं और निर्विशेषसविशेष स्तोत्र में भी "चर्चितंच नवगोपबालया" इत्यादि। श्लोक से ऐसा कहा है कि नवीन गोपबाला श्रीराधिकाजी ने प्रेम भक्ति रूप रससे सुशो-भित माला से जिन श्रीकृष्ण का पूजन किया है उनकी मैं स्तुति करता हूं। ऋग्वेद के परिशिष्ट भाग की (राधया माधवो देवः) इत्यादि श्रुति से भी यही आवे है कि श्रीकृष्ण को वश में करने से, भक्तजनों करिकें आराधित होने से, श्रीकृष्ण करिकें आराधित होने से, अपने भक्तों के सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धि करने से, और श्रीकृष्ण की आराधना करने से राधा कहीं जाती हैं। एवं प्रभाव शालिनी श्रीराधिका जी के साथ माधव श्रीकृष्णचन्द्र नित्य खेलते हुए सुशो-भित होते हैं और अन्तिम व्याख्या में (अनयाराधितः) इत्यादि दशम स्कन्ध का श्लोक प्रमाण है। राधया यहां पर हेतु में तृतीया विभक्ति है। और वैयाकरणों के मतमें फलकी सिद्धि करने के योग्य पदार्थ को हेतु कहते हैं। जैसे लोक में प्रजा के कारण प्रजापति कहे जाते हैं। तैसे ही राधा के कारण माधव कहे जाते हैं। मा नाम राधा, उनके धव नाम पति को माधव कहते हैं। इससे माधव के

माधवपने में श्रीराधिकाजी ही कारण हैं तैसेही नित्य क्रीड़ा करने से देव कहे जाते हैं इससे श्रीकृष्ण के नित्य विहारीपने में श्रीराधा ही कारण हैं अथवा (राधया) यहाँ पर (इत्थंभूत लक्षण) में तृतीया विभक्ति होने से राधा से उपलक्षित नाम युक्त को माधव कहते हैं अर्थात् जैसे जटाओं से तपस्वी का तपस्वीपना ज्ञात होता है तैसेही श्रीराधिकाजी से ही माधव का माधव पना ज्ञात होता है श्रीराधिका जी के सङ्ग ही सङ्ग माधव देव अच्छे प्रकार सेवनीय हैं श्रीराधिका जी के विना केवल माधव के पूजन से सम्मोहन तन्त्र में महादेवजी ने पार्वतीजी से इस प्रकार दोष कहे हैं कि हे शिवे, जो पुरुष गौरतेज अर्थात् श्रीराधिका जी के विना केवल श्यामतेज अर्थात् श्यामसुन्दर का पूजन जप और ध्यान करैगा तो वह पुरुष पातकी होगा। " हे महेश्वरि " तेजके भेदसे वह भेद करने वाला इन दोषों से लित होगा ब्रह्मघाती सुरापश्च गोघ्नश्च गुरुतल्पगः। स्वर्णापहारी पञ्चैते महापातकिनः स्मृताः " इस स्मृति के अनुकूल ब्राह्मण के मारने वाला, मद्यपी, गौकी हत्या करने वाला, गुरुपत्नी गामी और सुवर्ण का चोर ए पाँच महा पातकी हैं। यहाँ पर दो चकारों से गोघ्न, गुरुतल्पग और पाँचों का सन्मान करने से छठवाँ पञ्चम अर्थात् इन्हों का सम्बन्ध करने वाला, (तत्संसर्गी) लिया गया है। निचोड़ यह हुआ कि महापातकियोंको जोजो दोष लगते हैं वे सब दोष भेद कर्त्ताओं को लगते हैं। क्योंकि भगवान् में एक भक्त वात्सल्य गुण ऐसा प्रबल है कि एकही ज्योति श्रीराधा और माधव रूप से प्रगट हुआ है। तैसेही राधा सुधानिधि स्तोत्र में ग्रन्थकार महानुभाव ने श्रीराधिका की प्रार्थना करी है कि हमको सबसे उत्तम माधुर्यरस से रसीली जो उज्जल अर्थात् शृङ्गार रस रूप प्रेम की हृदय रूप, अर्थात् प्रेमकी साक्षात् मूर्त्ति, एवं शृङ्गार रसमयी लीला कला में जो विचित्रता उसकी परम अवधि अर्थात् शृङ्गार लीला कला में वैचित्र्य श्रीराधिका जी में ही परिपूर्ण स्वरूप से विराजमान है इनसे अधिक अन्यत्र नहीं है। श्रीभगवान् श्रीकृष्ण की पूजनीय कोई विलक्षण ईशतारूप, और श्रीकृष्ण को ईशान जो शिवजी उनके अन्तर्यामी होने से ईशानी रूप, इन्द्र के अन्तर्यामी होने से शचीरूप, महा सुखमय शरीर वाली और स्वाधीन, पराशक्ति रूप श्रीवृन्दावन

नाथ श्रीकृष्ण की पटरानी राधिकाजी ही सेवनीय हैं। श्रीराधिका जी के दास्य को छोड़ श्रीकृष्ण के सङ्ग की आशा से जो पुरुष साधन करता है वह पुरुष पूर्णिमा के बिना ही पूर्णचन्द्र की कान्ति को देखना चाहता है। और भी बात है कि श्याम जो श्रीकृष्ण उनकी कृपा रूप प्रवाह जलकी तरङ्गों का बीजरूप श्रीराधिकाजी तिनको जो नहीं जानते हैं वे पुरुष महामृताब्धि श्रीकृष्ण रूप को प्राप्त होकर भी सुख के बिन्दु मात्र को भी नहीं प्राप्त होते हैं। अब श्रुति में कहे हुए (माधवेनैव राधिका) इत्यादि पदकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि देवी और नानारूपैः,इन दोनों पदोंका शेष करते हैं अर्थात् देवी और नाना रूपैः, ए पद मूलमें न होने से ऊपरसे जोड़ दिये जाते हैं। और वामनजी का यह मत है कि जिन अव्ययों के लगानेसे वाक्य के पदों के अर्थ में चमत्कार स्पष्ट प्रतीत होने लगे , उन उन अव्ययों का ग्रहण करना उचित है इससे यथा और तथा का ग्रहण करलिया। और तृतीय स्कन्ध में कही हुई कपिलमुनि की उक्ति से भगवान् की, सेवाके बिना भगवान् करिके दीहुई, सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य सारूप्य और एकत्वरूप मुक्ति को जो जन ग्रहण नहीं करते हैं वेही परम भक्त जन लिये जाते हैं अन्य जनों का ग्रहण नहीं है। इससे सबका सारांश यह है कि जैसे परमभक्तजनों के हृदय में नानारूप करिके सब प्रकार से माधवदेव राधिका के साथ सुशोभित होते हैं तैसे ही श्रीराधिका देवी माधव के ही साथ सुशोभित होती हैं यद्यपि पहिले पाद में "राधया" यहाँ पर सहार्थ से युक्त अप्रधान अर्थ में तृतीया विभक्ति होने से श्रीराधिकाजी का अप्राधान्य प्रतीत होता है तथाऽपि उस अप्राधान्य को दूसरे पाद में माधवेनैव का, एव पद दूर करता है। इतने ही में श्रीराधिका जी को प्रधानता सुनकर मन-भनाते हुए वादी बोले कि अन्य लोग शक्ति को अप्रधान और शक्ति-मान् को प्रधान मानते हैं आप उन लोगों के विरुद्ध शक्ति को प्रधान मानते हैं यह क्या विचित्र बात है ? तब सिद्धान्ती [बोले कि एक अन्तरङ्ग शक्ति और दूसरी बहिरङ्ग शक्ति होने से, माया, बहिरङ्ग, अप्रधान शक्ति और श्रीराधिकाजी साक्षात् स्वरूप शक्ति होने से प्रधानशक्ति हैं राधा और माधव बराबर ही हैं इनमें गौण और मुख्य का झगड़ा नहींहै, इस बात की स्फूर्त्ति तो शृङ्गाररसमयी लीला का

साक्षात् अनुभव करने वाले रसिक जनों के हृदय में ही होती है सकल साधारण जनों के हृदयमें नहीं होती इसीसे हम पहिलेही कह चुके हैं कि जन करिकें परम भक्त जन लिये हैं, इतनी सुन वादी झट चुप होगये ।

" पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चे " तिश्रुतेः " विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथाऽपरा । अविद्या कर्मसंज्ञाऽन्या तृतीया शक्तिरिष्यते" इति स्मृतेश्च अथर्ववेदे श्रीराधातापन्यामपि " येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाऽभू " दिति पाद्मोक्तकार्त्तिकमाहात्म्येऽप्युक्तम् " रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृन्दावने वने " इति ॥ अत्र राधिकाद्यन्तरङ्गां स्वस्वरूपशक्तिं केचिज्जडात्मिकां प्रकृतिं मन्यन्ते तत्तेषां मननं भ्रममूलकमेव ॥ यतः श्रीविष्णुपुराणे उक्तम् ॥ "ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित्त्वय्येका सर्वसंश्रये। ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते" इत्यनेन स्वरूपशक्तेरेव त्रयोभेदा उक्ताः ॥ स्वयं ह्लादते ह्लादयति श्रीकृष्णमिति वा ह्लादिनी स्वस्वरूपान्तरङ्गा शक्तिरेव नतु बहिरङ्गा जडात्मिका प्रकृतिरिति ॥ एतत्सर्वमभिप्रेत्यैव बृहद्गौतमीयतन्त्रेप्युक्तम् ॥ " देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता ॥ सर्वलक्ष्मीमयी

सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा वराभयकरा ध्येया सेविता सर्वदैवतैरिति ॥ " सिद्धेश्वरतन्त्रे श्रीराधिका-नाममाहात्म्यमप्युक्तम् " राधानामसमं नास्ति नास्ति राधासमा प्रिया ॥ नास्ति प्रेमवती राधासमा जगत्त्र-येऽपरा ॥ सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत् फलम् ॥ एकावृत्त्या तु राधाया नामैकं तत्प्रयच्छति " एवमादौ द्वयोरेव श्रीमतोराधाकृष्णयोर्नामयुगलस्यैवो-च्चारणं समुचितमिति समवधार्य्य मेधावी युगलना-मानि जपेत् ॥ युगलनाम्नोरनयोः प्रकारो दृश्यते स्फुटम् ॥ राधेकृष्ण राधेकृष्ण कृष्णकृष्ण राधेराधे ॥ राधेश्याम राधेश्याम श्यामश्याम राधेराधे ॥ मन्त्रे-णानेन युगलनामनी सततं जपेदिति बोद्धव्यं मनी-षिभिरित्यलं विस्तरेण प्रकृतमनुसरामः ॥ नामनामि-नोरभेदादेव नाम्नश्चैतन्यमुक्तं स्कान्दीयप्रभासखण्डे " मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां सकलनिगमवल्ली-सत्फलं चित्स्वरूपम् ॥ सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा भृगुवर नरमात्रं तारयेत्कृष्णनामे " ति

तौ भी सिद्धान्ती श्रुति के प्रमाण को देते हुए गर्जने लगे कि श्रीकृष्णपरब्रह्म की शक्ति परा, अर्थात्, श्रीकृष्ण के स्वरूप से विलक्षण नाम भिन्न है। विविधा नाम, अनन्त और अचिन्त्य प्रकार वाली दूसरे प्रमाणों के बिनाही सुनी जाती है। जैसे श्रीभगवान् का

स्वरूप अनादि और अनन्त होने से नित्यही है, तैसे ही परा-शक्ति स्वाभाविकी अर्थात् नित्यही है। भगवान् की शक्ति अनिर्वचनीय मिथ्या और औपाधिकी कहने वालों के मुखमें स्वाभाविकी यह पदही धूलि भरता है॥ श्रीभगवान्के सम्पूर्ण गुणकर्मादिकोंके ग्रहण करने के लिये श्रुतिमें चकार पढ़ा है॥ इससे भगवान्की शक्ति ही नित्यहै यह बात नहींहै किन्तु श्रीभगवान्के ज्ञान-बल-क्रिया और सम्पूर्ण गुणकर्मादिकभी नित्यही हैं॥ विष्णुशक्ति अर्थात् श्रीभगवान्की श्रीराधिका रुक्मिणी और श्रीसीताजी से आदिलेकर जो २-प्रधान प्रधान शक्तियाँ हैं वे सबही स्वरूपकी साक्षात् शक्ति होने से परा एवं अन्तरङ्गा कहीजाती हैं। और क्षेत्रज्ञनामवाली अर्थात् जीव-शक्ति अपरा कही जाती है और इन दोनों से भिन्न कर्मसंज्ञानामक अविद्या तीसरी श्रीभगवान् की बहिरङ्गा शक्ति है। अथर्ववेदकी श्रीराधातापिनी में भी इसीप्रकार कहा है कि जो यह श्री राधिकाजी औरशृङ्गाररसके समुद्र श्रीकृष्णचन्द्रजी इनदोनों का एकही देहहै वह क्रीड़ाके लिये राधा और माधवरूपसे दो प्रकार का हुआहै और पद्मपुराणमें कहे हुए कार्त्तिक माहात्म्य में भी कहा है कि ह्लादिनीशक्तिही श्रीद्वारकापुरीमें रुक्मिणी रूपसे और श्रीवृन्दावननामकवनमें श्रीराधिकारूप से विराजमानहैं॥ यहां पर कोई कोई महानुभाव श्रीराधिकाजी से आदिलेकर अन्तरङ्ग स्वरूपशक्तियों को जड़स्वरूप-प्रकृति मानलेहैं यह उनलोगों का मानना भ्रममूलकहीहै यथार्थ नहीं है क्योंकि श्रीविष्णुपुराण में कहा है कि सब के आधार आप में एका नाम प्रधान जो स्वरूपशक्ति है वही ह्लादिनी सन्धिनी और सम्वित् रूपसे विराजमान है और प्राकृत गुणसे रहित आपमें जो प्राणिमात्रको सुख और दुःख देने वाली मिश्रा नाम तीनगुणोंसे मिली हुई अविद्या अर्थात् जड़ात्मिका प्रकृति आप में नहीं है। इस वचनसे यह भी आवै है कि स्वरूप शक्तिके ही तीन भेद ग्रन्थकार ने कहेहैं अपने आपही जो सुखका अनुभव करतीहैं और श्रीकृष्णचन्द्रको सुख का अनुभव कराती हैं उन्हीं को ह्लादिनी शक्ति कहते हैं॥ वह ह्लादिनी शक्ति श्रीकृष्णकी अन्तरङ्ग स्वरूपशक्तिहीहैं बहिरङ्ग जड़स्वरूप प्रकृति नहीं हैं इन सब अभिप्रायोंको लेकर ही बृहद्गौतमीयतन्त्र में भी इस प्रकार कहा है कि- दीव्यतीति देवी अर्थात् क्रीड़ाकरने वाली

कृष्णमयी अर्थात् श्री कृष्ण में अनुराग से युक्त परदेवता अर्थात् पर जो श्रीकृष्ण उनकी देवता के तुल्य, देवता अर्थात् अत्यन्त प्रीति का विषय श्रीराधिकाजी कही गई हैं। लक्ष्मीपद करिकें वाच्य रुक्मिण्यादिकों का, एक श्रीराधिका ही आधार होने से सर्वलक्ष्मी-मयी एवं सम्पूर्ण कान्तियों को मोहित करने से सर्वकान्ति संमोहिनी दोनों हस्त कमलों से अपने परम भक्तों को वर और अभय देने वाली सम्पूर्ण देवताओं करिके ध्यान करने योग्य परा शक्ति श्री राधिकाजी ही सबको सेवनीय हैं। सिद्धेश्वर तन्त्र में श्रीराधिकाजी के नाम का माहात्म्य भी इस प्रकार कहा है कि श्रीराधा इस नाम के बराबर तीनों लोकों में अन्य कोई नाम नहीं है और तीनों लोकों में श्रीराधिकाजी के तुल्य कोई दूसरी श्रीकृष्ण की प्रिया नहीं हैं। एवं श्रीराधिकाजी के तुल्य दूसरी प्रिया श्रीकृष्ण में प्रेमवाली भी नहीं हैं। श्रीराधिकाजी के अत्यन्त पावन, हजार नामों की तीनवार आवृत्ति करने से भक्त को जो फल मिलता है वह फल श्रीराधिका इस नाम को एक वार लेने ही से मिलता है। इस प्रकार प्रथम श्रीमान् राधा और कृष्ण इन दोनों के युगल नाम का उच्चारण करना ही ठीक है इससे बुद्धिमान पुरुष ऐसा निश्चय करिकें युगल नामों का ही जप करें। अब हम लोग इन दोनों युगल नामों के उच्चारण की रीति को स्पष्ट दिखाते हैं आप लोग दत्तचित्त होते हुए कर्णेन्द्रिय द्वारा सुनिये वह यह है कि (राधे कृष्ण राधे-कृष्ण कृष्ण कृष्ण राधे राधे। राधेश्याम राधेश्याम श्याम श्याम राधे राधे।) परम भक्त इस प्रकार इस मन्त्र से युगल नामों का निरन्तर जप करें ऐसा विवेकी पुरुषों को जानना चाहिये बस होगया बहुत विस्तार से क्या प्रयोजन है। अब हम लोग प्रकरणकी बात की ओर झुकते हैं। नाम और नामी के अभेद से जैसे श्री कृष्णस्वरूप नामी चेतन हैं ऐसेही श्रीकृष्ण यह नाम भी चेतन ही हैं यह प्रसङ्ग स्कन्द पुराण के प्रभास खण्ड में इस प्रकार कहा है कि हे शौनक! श्रीकृष्ण यह नाम मीठे से भी अत्यन्त मीठा और मङ्गलीक वस्तुओं का भी मङ्गल करनवारी एवं सम्पूर्ण वेद रूप लता का उत्तम फल है कहाँ तक वर्णन करें चेतन स्वरूप श्रीभगवन्नाम एक वार भी श्रद्धा पूर्वक लिया गया अथवा अनादर से लिया गया तो भी नरमात्र को

संसार रूपी सागर से पार लगाही देता है इसमें सन्देह नहीं है। वादी शङ्का करते हैं कि कोई महानुभाव लाखों नाम रटते हैं तौ भी माधुर्य रस का अनुभव नहीं होता है और उल्टी पापों में भी प्रवृत्ति देखने में आती है इसमें क्या कारण है तब सिद्धान्ती उत्तर देते हैं कि भगवन्नाम में माधुर्यरस शास्त्र द्वारा सिद्ध ही है लेकिन श्रीभगवन्नाम लेने वालों को माधुर्यरस का ठीक ठीक अनुभव न होने में कई एक कारण हैं उन कारणों में से मुख्य कारण को तौ, थोड़ा सुनिये। एक तो मुख्य कारण यह है कि जो दश भगवन्नामापराध आगें कहे जायँगे उन दश भगवन्नामापराधों में से कोई एक भी भगवन्नामापराध बन जायगा तो भी माधुर्यरस का अनुभव नहीं होगा, जैसे यद्यपि पित्त बिगड़े भये रोगीको, मिश्री मीठी होने परभी कड़वी लागती है तोभी सद्वैद्य के कहने से जैसें तैसें मिश्री का सेवन करता है फिर सेवन करते करते ही उस रोगी के पित्त शान्त करती हुई मिश्री मीठी लगने लागती है इसी तरह अनेक जन्मोंके किये हुए पाप एवं भगवन्नामापराधों से दूषित अन्तःकरण वाले पुरुषों को आरम्भ में भगवन्नाम के लेने परभी यथार्थ माधुर्यरस का अनुभव नहीं होता है तौ भी गुरुजी के उपदेश से निरन्तर भगवन्नाम लेते लेते ही माधुर्यरस का साक्षात्कार होने लगैगा और पापादिकों में प्रवृत्ति भी नहीं होगी।

ननु मनुस्मृत्यादिधर्मशास्त्रेषु पापप्रक्षालनार्थं चान्द्रायणकृच्छ्रचान्द्रायणादिप्रायश्चित्तान्युक्तानि श्रीभागवतादिपुराणेषु तु श्रीभगवन्नाम्नैव सर्वपापप्रक्षालनमुक्तम्। तत्र का व्यवस्थेति चेदुच्यते श्रद्धाभक्तिज्ञानसंपन्नस्याधिकारिणः पुराणोक्तं भगवन्नामोच्चारणं प्रायश्चित्तं पुराणवाक्येष्वश्रद्धावतोऽधिकारिणोधर्मशास्त्रोक्तं चान्द्रायणव्रतादिप्रायश्चित्तं वर्त्तते॥ ननु भवतु

स्मृतिपुराणवचनानामन्योन्यविरोधपरिहारव्यवस्थेयम् इह पुनः पुराणवचनानामेवान्योन्यविरोधोदृश्यते कानि चित्सकृत् कीर्त्तनादेव पापक्षयं वदन्ति कानि चिदावर्त्स्यमानानीति । तथाहि "सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वे"त्यादिवचनेषु सकृदेव भगवन्नामकीर्त्तनात्सर्वपापक्षयउक्तः । श्रीभागवतेतु "हरेर्गुणानुवादःखलु—सत्त्वभावन" इति "नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्त्तना"दितिच कस्तत्र विरोधपरिहार इति ॥ तत्रोत्तरमुच्यते तत्राप्यनुतप्तानुतप्तविषयत्वेन व्यवस्था तथाहि श्रीविष्णुपुराणे "कृष्णानुस्मरणं पर" मित्यविशेषेण प्राप्तामावृत्तिमनुतप्तविषये ऽपवदति "कृते पापे ऽनुतापोवै यस्य पुंसः प्रजायते ॥ प्रायश्चित्तंतु तस्यैकं हरिसंस्मरणं पर" मिति । अनुतप्तस्य सकृन्नामकीर्त्तनमितरस्यावर्त्स्यमानमित्यर्थः । अतोऽनुतप्तविषयैवावृत्तिरित्यर्थः ॥ ननु नेह निर्द्धारणमावृत्तेः । इयतोवारान् इयन्तं कालमिति वा । ततश्च कथमनिर्द्धारिता सा विधीयते ॥ अत्रोच्यते आवृत्तिश्रवणादेव पापतारतम्यादावृत्तितारतम्यं कल्प्यते श्रूयतेच तदष्टाक्षरब्रह्मविद्यायाम् ॥ "गोमूत्रयावकाहारो ब्रह्महा मासिकैर्जपैः ॥ पूयते ततएवार्वाङ्महापातकिनोऽपरे ॥

इत्यादि। तस्माद्यस्य पापं कृतवतोभाराक्रान्तस्येव कदाचिदितः परं न पापे प्रवर्त्ते इति पश्चात्तापोजायते तस्य सकृत्कीर्त्तनं शोधकम्॥ इतरस्य पुनरावर्त्त्यमानमिति॥

वादी शङ्का करते हैं कि मनुस्मृति से आदि लेकर जितने धर्मशास्त्र हैं उन्हों में पापों के धोने अर्थात् नाश के लिये चान्द्रायण, कृच्छ्रचान्द्रायण सें आदि लेकर प्रायश्चित कहे हैं और श्रीभागवत से आदि लेकर पुराणों में तो श्रीभगवन्नाम ही से सम्पूर्ण पापों का धोना, अर्थात् नाश होना कहा है। तब कहिये कि इन दोनों विषयों का ठीक २ क्या उत्तर होगा। तब सिद्धान्ती इस प्रकार समाधान करते हुए बोले कि, जो पुराणों के वाक्यों में श्रद्धापूर्वक भक्ति और ज्ञान से युक्त अधिकारी है उसके लिये पुराण में कहा हुआ श्रीभगवन्नाम का उच्चारण ही पापों का नाश करने वाला प्रायश्चित्त है। और जो अधिकारी पुराणों के वाक्यों में श्रद्धा नहीं रखता है उसके लिये तो धर्मशास्त्र में कहे हुए, चान्द्रायण, कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतों का करना ही प्रायश्चित्त वर्त्तमान है तब भी वादी बोले कि, स्मृति और पुराणों के वचनों का जो आपस में विरोध आता रहा उसके हटाने की रीति जो आपने कही वही रही। लेकिन इस विषय में फिर भी पुराणों के वचनों का तो आपस में विरोध इस प्रकार आता ही है कि, कितनेही पुराण के वचन तो यह कहते हैं कि एक बार श्रीभगवन्नाम लेने ही से पापों का नाश होता है और कितने ही पुराण वचनों से यह आता है कि बारंबार श्रीभगवन्नाम का उच्चारण किया जायगा तब ही पापों का नाश होगा। तैसे ही पुराण वचनों को दिखाते हैं (सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वेत्यादि वचनों में एकबार ही श्रीभगवन्नाम के उच्चारण से सब पापों का नाश कहा है। और श्रीभागवत में तो (हरेर्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावन इति (नातः परंकर्मनिबन्धकृन्तनं मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्त्तनादितिच) इनवाक्यों में बारंबार भगवन्नामका उच्चारण कहाहै तो कहिये इस रीति से आये हुए विरोधके हटाने का कौन उपाय है तब इस का सिद्धान्ती उत्तर इस प्रकार कहते हैं श्रीविष्णुपुराणमें कहा है कि

श्रीकृष्ण का बारंबार स्मरण करना श्रेष्ठ है यहाँ पर यह जानना चाहिये कि जिस पुरुष को पाप करने पर पीछे शोक उत्पन्न होताहै उस पुरुष के तो एकबार भगवन्नाम लेनेही से सम्पूर्ण पाप कट जाते हैं और जो पुरुष पाप करने परभी शोक नहीं करता है उस पुरुष के तो बारंबार श्रीभगवन्नामका उच्चारण करने से ही पाप कटेंगे। इस प्रकार—अनुतप्त और अननुतप्त पुरुषों को लेकरही पुराण वचनोंकी व्यवस्था करनी चाहिये। इतने ही में वादी फिर शङ्का करते हैं कि आपके कहने से यह निश्चय हुआ कि बारंबार भगवन्नामके उच्चारणही को आवृत्ति कहते हैं तो जिस आवृत्ति का काल और संख्या का ठिकानाही नहीं है तो फिर ऐसी आवृत्तिका क्यों विधान करना चाहिये। तब सिद्धान्ती इस विषय का उत्तर इस प्रकार कहते हैं कि आवृत्तिके सुनने से ही पापों के तारतम्य होने पर आवृत्ति की भी तारतम्य कल्पना की जायगी अर्थात् बहुत पाप होने पर बहुत काल तक अनेकबार भगवन्नाम का उच्चारण किया जायगा और थोड़ा पाप होने पर थोड़े काल तक थोड़ी संख्यासे भगवन्नाम का उच्चारण किया जायगा यही प्रकार अष्टाक्षरब्रह्मविद्या में इस रीतिसे सुनने में आवै है कि—ब्राह्मणका मारने वाला पुरुष गोसूत्रमें भिगोये हुए यव का आहार करता हुआ एक महीना भर मन्त्रका जप करने से पवित्र होता है और ब्राह्मण हत्यासे अन्य पातक करने वाले पुरुष थोड़े दिन जप करनेसेही पवित्र होते हैं इसका सारांश यह है कि जैसे बहुत बोझा को लेकर चलता हुआ पुरुष जब मार्ग में भार से पीड़ित होता है तब पश्चात्ताप करता हुआ कहता है कि राम राम अब इतना बोझा लेकर कभी भी नहीं चलूंगा। तैसेही पापों को करता हुआ पापी पुरुष अपने मनमें ऐसा पश्चात्ताप करै कि हे! दीनबन्धो हे! कृपासिन्धो हे! भगवन् आज तक जो पाप किये सो किये अब मैं कभी भी इसके आगे पाप नहीं करूंगा, तब तो उस पापी के पाप एकबार श्रीभगवन्नाम के उच्चारण करने से ही नष्ट हो जाते हैं॥ और जो पापी पुरुष पाप करिकें पश्चात्ताप नहीं करता है उस पापी पुरुष के पाप तो बहुत काल तक अनेक संख्या से जब भगवन्नाम लेगा तबहीं कटेंगे।

ननु स्कन्द पुराणे " यस्य स्मृत्याच नामोक्त्या तपोदानक्रियादिषु । न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्योवन्दे तमच्युतम,, श्रीमद्भागवते । "मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देश कालार्हवस्तुतः । सर्वं करोति निश्छिद्रं नाम संकीर्त्तनं हरेः,, श्रीविष्णुपुराणे । "वासुदेवे मनोयस्य जपहोमार्चनादिषु । तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम् " । इत्यादि वचनैर्भगवन्नाम्नः कर्माङ्गत्वमवगम्यते । अन्यदपि श्रूयताम् । यदि भगवन्नामोच्चारणस्य तपोदानादिकर्मणामङ्गत्वं स्यात्तर्हि कथं केवलस्य भगवन्नामोच्चारणस्य पापनाशकत्वम् । किञ्च यद्यत्र भगवन्नामोच्चारणं स्वातन्त्र्येण पापनाशाय विवक्षितं स्यात्तर्हि जपहोमार्चनादिषु—इति कथमुच्येत अतः श्रीभगवन्नामोच्चारणस्य सर्वकर्माङ्गत्वात् प्रायश्चित्तस्यापि कर्मान्तःपातित्वाच्च प्रायश्चित्ताङ्गत्वेनैव श्रीभगवन्नामकीर्त्तनं पापक्षयहेतुः नस्वतन्त्रम । इति चेदुच्यते समाधानम् । यथा पूर्वमीमांसायां द्वादशाध्याय्याम् । जैमिनिसूत्रम । " एकस्य तूभयार्थत्वे संयोगपृथक्त्वम " ४ । ३ । ५ । इति—तुशब्दः पूर्वाधिकरणतोऽस्याधिकरणस्य पार्थक्य सूचनाय । संयोगस्य पृथक्त्वमिति विग्रहः । संयोग

स्येत्यस्य संयुज्यते तादर्थ्येन बोध्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या वाक्यस्येत्यर्थः। पृथक्त्वं नानात्वम् कारणमिति शेषः तथा चैकस्य द्रव्यस्योभयार्थत्वे वाक्यनानात्वं कारणमिति सूत्रार्थः पर्यवस्यति, उभयार्थत्वं कर्मद्वय निष्पादकत्वम । इतियावत्—यथैकस्य खादिरत्वस्य ऋत्वर्थत्वम्—पुरुषार्थत्वंच । खादिरो यूपोभवति " " खादिरं वीर्यकामस्य यूपं कुर्वीत " इति वाक्याभ्यां बोधितत्वात् । तथैकस्य हरिनाम्नोऽपि मुक्तेः फलान्तरस्य तत्तद्बोधकवाक्याभ्यामुभयार्थतेत्यर्थः ॥तथा च हरिनाम्नोऽनेकफलसम्बन्धेऽपि प्रायश्चित्तार्थत्वं युक्तमेवेति तथैवात्राऽपि यस्यस्मृत्येत्यादिवचनैः कर्मसाङ्गुण्यार्थं कर्माङ्गं भवदपि भगवन्नाम स्वातन्त्र्येण केवलं पापसंहारकमपि भवति पूर्वमीमांसकाः श्रीभगवन्नामकीर्त्तनस्य कर्माङ्गत्वं वदन्ति तन्मतेनेदमुत्तरमुक्तम ॥ वस्तुतस्तु श्रीभगवन्नामकीर्त्तनं स्वातन्त्र्येणैव पापनाशनहेतुः तथैवोक्तम ।

श्रीमद्भागवत ६ षष्ठ स्कन्धे ।

" कर्मणा कर्मनिर्हारो न ह्यात्यन्तिक इष्यते । अविद्वदधिकारित्वात् प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥ " कर्मा-

त्मकप्रायश्चित्तनिन्दापूर्वकं पुनरप्युक्तं श्रीमद्भागवते ६५० केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः । अघं धुन्वन्ति कात्स्न्र्येन नीहारमिवभास्करः ॥ इति ब्रह्मविद्या समानस्कन्धतया केवलायाः कीर्त्तनादिलक्षणायाः, भगवद्भक्तेः प्रायश्चित्तत्वेनावधारितत्वात् ॥ तथा—सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् । नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः, एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम् । यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः, अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥ इति तत्रतत्रैवकार श्रवणात् ॥ एतावताऽलमघानिर्हरणाय पुंसां सङ्कीर्त्तनं भगवतोगुणकर्मनाम्नाम् । विकुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि, नारायणेतिम्रियमाण इयाय मुक्तिम् इत्यादि वचनैः केवलस्य भगवन्नामकीर्त्तनस्यैव सर्वपापक्षयहेतुत्वं स्वातन्त्र्येणैवोक्तम्-नतुकर्माङ्गत्वेनेत्यलं पल्लवितेन

यहां पर वादी शङ्का करते हैं कि जिसके स्मरण और नामोच्चारण से तप दानादि कर्मों की न्यूनता शीघ्र ही पूर्ण होजाती है उस अच्युत को मैं नमस्कार करता हूं। मन्त्र, तन्त्र, देश, काल और पवित्रता आदि से न्यून (अपूर्ण) कर्म को हरिनाम सङ्कीर्त्तन पूर्ण कर देता है।

जिस पुरुष का मन वासुदेव में और जप होम अर्चनादिकों में लगा हुआ है उस पुरुष को इन्द्रादिपद की प्राप्ति विघ्न रूप है इस

प्रकार स्कन्द पुराण, श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराण के वचन से यह प्रतीत होता है कि श्रीभगवन्नामसंकीर्त्तन सब कर्मों का अङ्ग है अङ्गी नहीं है। और भी सुनिये जो आप श्रीभगवन्नामकीर्त्तन को तपोदानादि सब कर्मों का अङ्ग है अर्थात् गौण है और कर्म अङ्गी है अर्थात् मुख्य है। ऐसा मानोगे तो स्वतन्त्र केवल श्रीभगवन्नाम कीर्त्तन पापों का नाश करने वाला कैसे हो सकता है, और भी कहते हैं कि जो यहाँ पर श्रीभगवन्नामोच्चारण स्वतन्त्र पापों के नाश करने के लिये श्रीपराशरजी महाराज को कहनेको इष्ट होता तो मैत्रेयके प्रति संबोधन देकर जपहोमार्चनादिषु, ऐसा क्यों कहते, इसहेतुसे श्रीभगवन्नामोच्चारण सब कर्मोंका अङ्ग ही है और प्रायश्चित्त भी एक प्रकार का कर्म ही है इससे कर्मों के भीतर ही आजाने से प्रायश्चित्त का अङ्ग होता हुआ ही श्रीभगवन्नामसंकीर्त्तन पापों के नाश करने में कारण है स्वतन्त्र कारण नहीं है सिद्धान्ती वादी की इतनी बात सुन कर हँसते हँसते बोले कि हम समाधान कहते हैं आप ध्यान देकर सुनिये —बारह अध्याय वाले पूर्वमीमांसा शास्त्र के चौथे अध्याय के तीसरे पाद में भगवान् जैमिनि महर्षि ने-

एकस्य तूभयार्थत्वे संयोगपृथक्त्वम्।

यह पाँचवां सूत्र बनाया है इस सूत्र में तु शब्द इस बातको सूचित करै है कि पहले अधिकरण से यह अधिकरण अलग है एक द्रव्य को दो कार्यों में उपयोगी होने में संयोग अर्थात् वाक्य पृथक् अर्थात् अनेक होने चाहियें। जैसे एक खैर वृक्ष का यूप (खम्भा) का सामान्य यज्ञ के लिये ग्रहण होता है और वीर्य की इच्छा करने वाला पुरुष भी विशेष यज्ञ के लिये खैर की लकड़ी काही खम्भा बनावे क्योंकि-

खादिरो यूपो भवति,, खादिरंवीर्यकामस्य यूपं कुर्वीत

ये दोनों वचन इस अर्थमें प्रमाणहैं। इसी तरह एक श्रीभगवन्नाम मुक्ति को देता है और किये हुये कर्मों की न्यूनता को भी पूर्ण करता है। श्रीहरिनाम अनेक फलों का देने वाला होकर भी

प्रायश्चित्त के लिये भी ठीक है वैसे ही यहां पर भी "यस्य स्मृत्ये" इत्यादि वचनों के द्वारा यज्ञादि कर्मों को उत्तम होने के लिये कर्मों का अङ्ग होता हुआ भी श्रीभगवन्नाम स्वतन्त्रता से पापों का नाश भी करता है। पूर्वमीमांसा के पढ़ने वाले श्रीभगवन्नाम कीर्त्तन को कर्म का अङ्ग कहते हैं उन्हीं के मत से यह उत्तर कहा गया है सांची बात तो यह है कि श्रीभगवन्नामकीर्त्तन स्वतन्त्रही पापों के नाश करने में कारण है यही बात श्रीमद्भागवत के षष्ठस्कन्ध में इस प्रकार कही है कि प्रायश्चित्त कर्म से पाप कर्म का अत्यन्त नाश नहीं होता क्योंकि पाप का नाश होने पर भी पाप वासना तो बनी ही रहती है ऐसा "प्रायः" देखा गया है कि पुरुष फिर भी पाप में प्रवृत्त होते हैं इससे "प्रायः" "तत्त्व ज्ञान" से शून्य पुरुष ही प्रायश्चित्तादि कर्मों के अधिकारी हैं और मुख्य प्रायश्चित्त तो तत्त्व ज्ञान ब्रह्मविद्या ही है इस प्रकार कर्मात्मक प्रायश्चित्त की निन्दा करते हुए फिर भी श्रीमद्भागवत के षष्ठस्कन्ध में कहा है कि कोई वासुदेवपरायण, महानुभाव के केवल भक्ति ही से सम्पूर्ण पापों का नाश कर देते हैं जैसे सूर्य "कुहर" का नाश कर देता है "दृष्टान्त" के द्वारा यह भी विचार करने की आवश्यकता है कि सूर्य के उदय होने ही से "कुहर" सर्वथा नष्ट हो जाता है किञ्चिन्मात्र भी शेष नहीं रहता है इसी तरह भक्ति रूप सूर्य के उदय होने पर समूल पापों का नाश हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्मविद्या के जोड़ तोड़ की केवल कीर्त्तनादि चिन्हों से विभूषित श्रीभगवान् की भक्ति ही मुख्य प्रायश्चित्त है ऐसा विवेकी पुरुषों ने निश्चय किया है इसी प्रकार सब पापियों के पापों के नाश करने के लिये यह श्रीविष्णु का नामोच्चारण ही ठीक ठीक प्रायश्चित्त है क्योंकि श्रीभगवन्नामोच्चारण से श्रीभगवान् को यह बुद्धि हो जाती है कि यह भक्त हमारा ही है श्रीभगवान् के दूत यमराज के दूतों से कहते हैं हे बेटा! नारायण तुम यहाँ आओ, इस चार अक्षर वाले संकेतित भगवन्नाम के उच्चारण से ही इस पापी अजामिल के पापों का प्रायश्चित्त होगया, ऐसे ही लौटते हुए दूतों से यमराज बोले कि, हे पुत्रो! श्रीभगवन्नाम के उच्चारण का महत्त्व देखो। अजामिल भी जिस श्रीभगवन्नाम के उच्चारण ही से मृत्यु रूपी जाल से अपने आपही छूट गया। इस तरह

इस प्रकरण में बारंबार एव पद के श्रवण होने से यही निश्चय होता है कि श्रीभगवन्नामोच्चारण से बढ कर कोई प्रायश्चित्त नहीं है। श्रीभगवन्नामोच्चारण का पापों के पापों के नाश करने के लिये प्रयोग करना यह बात अत्यन्त तुच्छ है। यहां बात इस श्लोक से कहते हैं कि श्रीभगवान् के गुण, कर्म और नामों का संकीर्त्तन पुरुषों के केवल पापों के नाश करने के लिये ही नहीं लेना चाहिये। यही बात "विकुण्ठ्य" इत्यादि पद से स्पष्ट करते हैं कि जिस कारण से, श्रद्धापूर्वक अच्छी तरह से श्रीभगवान् नारायण का नाम न लेकर, हे नारायण, ऐसे बेटा को पुकार, विशुद्ध नहीं लेकिन महापापवाला स्थिर चित्त नहीं किन्तु मरते मरते मरण के दुःख से विवश जो अजामिल उसके पापों का ही नाश भया होय यह बात नहीं किन्तु मुक्ति को भी प्राप्त होगया। इत्यादि वचनों से केवल श्रीभगवन्नाम संकीर्त्तन ही सब पापों के नाश करने में स्वतन्त्र कारण कहा है कर्म का अङ्ग नहीं है। बस होगया अब बहुत विचार से क्या प्रयोजन है।

अथ श्रीहरिनाममहिमानं वर्णयन्ति सकलान्यपि श्रुतिस्मृतिवाक्यानि अर्थवादभावमापन्नानि न स्वार्थे प्रामाण्यं संभावयितुं प्रभवन्ति कुतस्तर्हि तदभिहितेऽभिधेये प्रवर्तमानानां श्रद्धालुजनानामभिलषितार्था निष्पद्यन्ते तदपेशलम् यतः प्रमाभूतोऽर्थः फलवान्भवति अन्यथा आरोपितस्यापि सफलता प्रसज्येतेति ततोऽभिमतार्थनिष्पत्तिर्दूरापास्ता यथा अर्थवादवाक्यानां स्वशक्यार्थाभिधाने प्रयोजनमनुपलभमानानां "वायुर्वैक्षेपिष्ठा देवते" त्यादीनामानार्थक्यमाप्रसाङ्क्षीदिति प्राशस्त्ये लक्षणा शरणीकृता मीमांसकैः तथा भगवन्नाममाहात्म्यप्रतिपादकवचसां स्वार्थे

प्रामाण्याभावात्तत्प्रतिपादितेऽर्थे न कोपि प्रेक्षावान्प्रवर्त्तेत एतेन श्रूयमाणसर्वधर्म्मातिशायितमहिम्नो हरिनाम्नः सर्वधर्म्मेभ्योधिकश्रेयस्करत्वमित्यपास्तम् " प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्त्तते " इति न्यायेन निखिलस्यापि फलवत्येव प्रवृत्त्युदयात् अत्र ब्रूमः स्यादेवं यदि श्रीहरिनाममहिमानं वर्णयतां वाक्यानामर्थवादत्वं संभवदुक्तिकम् तदेव तु न संभवति विधिशेषत्वाभावात् नच श्रीभगवन्नाममाहात्म्यप्रतिपादकवचसां विधित्वाश्रवणाद् बलादन्यशेषत्वाक्रान्तत्वमाश्रयणीयम्—इतिवाच्यम्—यतो रागादितोऽप्राप्तार्थत्वेन विधिकल्पनाऽनपोद्या नच विधिवाचकपदाभावात् कथं विधिरुदीयते इति वाच्यम् वाचकपदाभावेऽपि विधेर्दर्शनात् यथा " यदाग्नेयोऽष्टाकपालो भवती,, ति वाक्ये यागवाचकपदाभावेऽपि याग विधायकत्वमस्ति तथाहि अग्निर्देवताऽस्य पुरोडाशस्येत्यर्थे विहितदेवतातद्धितान्ताग्नेयशब्दस्तस्य पुरोडाशपदसामानाधिकरण्याद् द्रव्यदेवतासम्बन्धोऽवगतः सच यागमन्तरा न संभवति द्रव्यदेवतासम्बन्धस्य यागादन्यत्र क्रियायामसम्भवात् यागक्रियायामेव सम्बन्धो वाच्यः देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागस्यैव याग-

रूपत्वाङ्गीकारात् अतः श्रुतद्रव्यदेवतासम्बन्धानुमितो यागो यजेतेति कल्पितपदेन विधीयते तथा प्रकृतेऽपि विधिवाचकपदकल्पना सम्भवति मन्त्रश्च मर्त्याधर्म्माणो विप्रा वयममर्त्यस्य जातवेदसस्ते नाम तपोदानादिसर्वधर्म्मेभ्योऽधिकं मन्यामहे विष्णोर्नाममाहात्म्यं सम्यक् प्रकारेण कश्चिज्जानन्तो यूयं नामकीर्त्तयतेत्याद्यर्थकाः "मर्त्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे विप्रासो जातवेदस आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन" इत्यादयो हरिनाम्नस्तपोदानादिसर्वधर्माधिक्यमवगमयन्ति यत्तु अर्थवादानां स्वार्थेऽप्रामाण्यं तदप्ययुक्तम् देवताधिकरणे मन्त्रार्थवादानामपि स्वार्थे प्रामाण्यस्य समर्थितत्वात् तथाच श्रीहरिनाम्नो यद्यत्फलं श्रुतिस्मृतिष्वभिहितं तत्सर्वं तात्त्विकमेव अप्रामाण्याकवलितत्वादिति सिद्धं हरिनाममहिमप्रतिपादकवचसां स्वार्थे प्रामाण्यं सुतरां प्रेक्षावतां तत्र प्रवृत्तिश्चोपपन्नेतिदिक् किञ्च, अर्थवादंहरेर्नाम्नि सम्भावयति योनरः,सपापिष्ठो मनुष्याणां नरके पतति स्फुटम्

श्रीहरिनाम की महिमा को प्रतिपादन करने वाले समस्त श्रुति, स्मृति, आदि के वचन केवल प्रशंसा करने वाले होने के कारण अपने अर्थमें प्रामाणिकता नहीं रखते हैं। जो लोग यह कहते

हैं कि उन वाक्यों द्वारा बतलाये गये अर्थमें प्रवृत्त होने वाले श्रद्धालु पुरुषों को अभीष्ट सिद्धि बराबर होती है इस लिये उनके प्रामाणिक होने में कोई भी सन्देह नहीं है—यह इस तरह उनका कहना भी सर्वथा असङ्गत है क्योंकि जो वस्तु अपने अर्थमें प्रामाणिकता रखती है वही वस्तु फल देनेवाली होती है यदि ऐसा न माना जाय तो मिथ्या कल्पित वस्तु से भी फल सिद्धि होजानी चाहिये। अतएव उन वाक्यों से कभी भी अभिमत अर्थ की सिद्धि नहीं हो सकती है। जैसा कि " वायु अति शीघ्रगामी देवता है " इत्यादि अर्थवाले " वायुर्वैक्षेपिष्ठा देवता " इत्यादि वाक्य अर्थमें कोई प्रयोजन नहीं रखते हैं और उनकी निरर्थकता हटाने के लिये मीमांसकों का यह सिद्धान्त है कि ऐसे वचन लक्षणावृत्ति द्वारा कर्मकी प्रशंसा करने वाले होते हैं। इस लिये जब कि श्रीभगवन्नाम की महिमा के प्रतिपादक वचनों की अपने अर्थमें कोई प्रामाणिकता नहीं है तो उनके द्वारा बतलाये गये अर्थमें किसीभी बुद्धिमान् की प्रवृत्ति होगी ? कदापि नहीं, क्योंकि ऐसा नियम है कि बिना प्रयोजन के मूर्ख मनुष्यभी किसी कार्य के करने में प्रवृत्त नहीं होता है। अतएव श्रीभगवन्नाम की महिमा सब प्रकारके धर्मों से उत्कृष्ट तथा अधिक कल्याणकारी है यह बतलाना भी युक्तियुक्त नहीं है—इस प्रकार श्रीभगवन्नाम की महिमा के प्रतिपादक वचनों पर जो आक्षेप किये जाते हैं वे बिल्कुल असङ्गत हैं क्योंकि श्रीभगवन्नाम की महिमा के बतलाने वाले वाक्य केवल प्रशंसा करने वाले ही नहीं हैं अतएव उनको प्रयोजनशून्य नहीं कह सकते हैं। जो वचन किसी विधि के अङ्ग होते हैं उन्हीं को प्रशंसा करने वाले वचन कहा जा सकता है अर्थात् वही अर्थवाद वाक्य बन सकते हैं किन्तु श्रीभगवन्नाम की महिमा के प्रतिपादक वचन किसी भी विधि के अङ्ग नहीं होते हैं इसलिये उन्हें अर्थवाद वाक्य अर्थात् प्रशंसाकरने वाले वचन कहना भी कभी उचित नहीं हो सकता है। यदि यहाँ यह कहा जाय कि भगवन्नाम की महिमा के प्रतिपादक वचनों में कोई विधि वाचक पद नहीं है अतएव उनको अवश्यही किसी विधि का अङ्ग मानना पड़ेगा—यह कहना भी मीमांसक सरणि की अनभिज्ञता का सूचक है कारण श्रीभगवन्नाम भोजनादि की तरह रागादि से प्राप्त

न होने से उसके प्रतिपादक वचनों में स्वतन्त्र विधि की कल्पना की जा सकती है। जहां कोई विधिवाचक पद नहीं भी होता है वह भी विधिवाक्य देखा जाता है। जैसे-

"यदाग्नेयोऽष्टाकपालो भवति"

इस वाक्य में याग वाचक कोई पद न होने पर भी इस पुरोडाश का अग्नि देवता है, इस अर्थ में तद्धित प्रत्यय करने से आग्नेय पद की सिद्धि होने के कारण इसको याग का विधायक वचन माना जाता है क्योंकि इसमें आग्नेय पद पुरोडाश पद के समानाधिकरण होने से द्रव्य और देवता का सम्बन्ध अवगत हो जाता है जो कि याग क्रिया के बिना दूसरी जगह उत्पन्न नहीं होसक्ता है। जहां देवता के निमित्त द्रव्य दिया जाता है उसे ही याग कहा जाता है और उसका द्रव्य देवता के सम्बन्ध द्वारा अनुमान होता है तथा "यजेत" इस कल्पित पद से उस अनुमित याग का विधान होता है। इसी प्रकार श्रीभगवन्नाम की महिमा के प्रतिपादन करने वाले वाक्यों में भी विधिवाचक पद की कल्पना की जा सकती है। "मरण धर्म वाले हम विप्रवर्ग मरण रहित अग्नि स्वरूप आपके नाम को तपदानादि समस्त धर्मों से अधिक उत्कृष्ट मानते हैं, भगवन्नाम के माहात्म्य को भली भांति जानने वाले आप लोग भगवन्नाम का कीर्त्तन करो" इत्यादि अर्थ वाले-

मर्त्ता अमृक्तस्य ते भूरिनाम मनामहे ॥

"विप्रासो जातवेदस आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन"

इत्यादि मन्त्र भी श्रीभगवन्नाम के महत्त्व को प्रतिपादन करते हुए समस्त धर्मों से उत्कृष्ट बतलाते हैं और जो यह कहा जाता है कि अर्थवाद वाक्य अर्थात् प्रशंसा करने वाले वचन अपने अर्थ में प्रामाणिक नहीं होते हैं यह कथन भी सर्वथा सिद्धान्त के विरुद्ध है क्यों कि देवताधिकरण में अर्थवाद वाक्यों की अपने अर्थ में प्रामाणिकता

का समर्थन किया है इसलिये श्रीभगवन्नाम की महिमा के प्रतिपादन करने वाले वचनों की अपने अर्थ में प्रामाणिकता सिद्ध होने से उनके द्वारा भगवन्नाम संकीर्त्तन में आस्तिक जनों की प्रवृत्ति होना तथा उनकी अभीष्ट सिद्धि होना सर्वथा समुचित है।

और भी सुनिये, जो पुरुष श्रीहरि भगवान् के नाम में अर्थ वाद की सम्भावना करता है वह पुरुष मनुष्यों के बीच में महापापी है और वह पुरुष अवश्यही नरक में पड़ता है।

नन्वेवमपि "साङ्केत्य पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदु" रित्येवमादीनां का गतिः। परिहासानादरयोर्हि न भक्ति-श्रद्धाऽनुतापाः सम्भवन्ति स्तोभसाङ्केत्ययोस्तु न ज्ञानमपि आवृत्तिरपि नापेक्ष्यते नचैषामतत्परत्वम्॥ अभ्यासाद्गतिसामान्याच्च॥ अभ्यासस्तावदजामिलोपाख्याने "अयं हि कृतनिर्वेशोजन्मकोट्यंहसामपि॥ यद् व्याजहार विवशोनाम स्वस्त्ययनं हरे" रिति। अत्र विवश इति विवक्षितं विवशस्य तु न श्रद्धादयः सम्भवन्ति "एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम् यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम्" अघोनोऽघवतः। एतेनैवेति श्रद्धाविरहः। यदा जगाद तदैवेति अनावृत्तिः॥ चतुरक्षरमितिच श्रद्धानपेक्षा अक्षरसमाहारस्यैव विवक्षितत्वात् संख्याकथनस्य चाधिकमिदमित्यभिप्रायः॥ एवमस्मिन् प्रकरणेभूयानभ्यासः॥

"नीहारमिव भास्करः॥ दहत्येधोयथाऽनलः। यथाऽगदं वीर्य्यतम " मित्यादिभिरुदाहरणैरुपपत्तिभिश्च पुनः पुनस्तत्प्रतिपादनमेवाभ्यासः सोऽभ्यासोनिरवद्यः। गतिसामान्यञ्च स्कान्दे " अवशेनापि सङ्कीर्त्य सकृद्यन्नाम मुच्यते॥ भयेभ्यः सर्वपापेभ्यस्तं नमाम्यहमच्युतम॥ अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्त्तिते सर्वपातकैः॥ पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिवे " ति। श्रीनारदीये च " हरिरिति सकृदुच्चरितं दस्युच्छलेनापि यैर्मनुजैः जननीमार्गं मुक्त्वा मम पदवीं निविशते मर्त्यैः " अतएषु कोऽधिकारीति। अत्रोच्यते। आसन्नमरणोऽत्राधिकारी।

भा० ६ प० ३ तृतीयाध्याये—२४श्लो०

" विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि
नारायणेति म्रियमाणइयाय मुक्तिम "

भा० ३ स्क० ६ अ० १५ श्लो० ब्रह्मोवाच

"यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि नामानि ये ऽसुविगमे विवशा गृणन्ति तेऽनेकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये" इति श्रीनारदीयेच

"ब्राह्मणः श्वपचीं भुञ्जन् विशेषेण रजस्वलाम् ॥ अश्नाति सुरया पक्वं मरणे हरिमुच्चरन् ॥ मुच्यते पातकात्तस्मान्नात्र कार्य्या विचारणा" इति निर्द्धारणाच्च युक्तं च तस्मिन्नवसरे श्रद्धादिनैरपेक्ष्यं नाम्न एव सुदुर्लभत्वात्। तस्मान्न केनचित्किञ्चिद्विरुध्यते इति सर्वं सुस्थम् ॥

वादी शङ्का करते हैं कि ऐसी व्यवस्था होने परभी—

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥

इत्यादि वाक्यों की कौन गति होगी, क्योंकि जहाँ हँसी और अनादर से श्रीभगवन्नाम निकल जाता है वहां पर भक्ति पूर्वक श्रद्धा और पश्चात्तापकी सम्भावना नहीं है। ऐसे ही स्तोभ और साङ्केत्य में भी ज्ञान और आवृत्ति नहीं हैं। कदाचित् आप कहें कि ये वाक्य श्रीभगवन्नामकी प्रशंसा करते हैं यथार्थमें श्रीभगवन्नाम सम्पूर्ण पापों का नाशक नहीं है। ऐसातो आप कभीभी नहीं कह सकते हैं क्योंकि एक ही बात को बहुत वाक्य कई बार कहें इसका नाम अभ्यास है और जैसे श्रीभागवत में भगवन्नाम सम्पूर्ण पापों का नाशक कहा है तैसेही अन्य पुराणों में भी कहा है यदि वाक्य प्रशंसाही करते तो एक श्रीभागवत के वाक्य से ही प्रशंसा आजाती अन्य पुराणों में कहने की क्या आवश्यकता है श्रीभागवत और अन्य पुराणों में भी एकही तरह कहा है,इसीका नाम गति सामान्य है। बस निश्चय होगया कि अभ्यास और गतिसामान्यरूप कारणसे—

साङ्केत्यं पारिहास्यमित्यादि

वाक्य प्रशंसा परक नहीं हैं किन्तु यथार्थही हैं। पहिले पहिल अजामिल के चरित्र ही में अभ्यास इस प्रकार आवै है, कि

श्रद्धाके विना श्रीभगवन्नाम के उच्चारण से ही इस पापी अजामिलने अनन्त जन्मों के पापों का प्रायश्चित्त कर लिया, क्योंकि श्रद्धा पूर्वक भक्ति और पश्चात्ताप के विना मृत्यु के भी वश होकर मोक्षदायक हरिका नाम लिया है, आवृत्ति के विना जब नाम के एक अक्षर के लेनेही से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं तब फिर क्या कहना चाहिये श्रद्धा के विनाही सम्पूर्ण चार अक्षरका अरे बेटा नारायण तुम यहां आओ यह सङ्केत नाम जब लिया तबही इस पापी के पापों का प्रायश्चित्त हो गया। इस प्रकार इस अजामिल के चरित्र में बहुत अभ्यास है अर्थात् श्रीभगवन्नाम से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं इसका बारंबार इस प्रकार कथन है कि जैसे सूर्य के उदय होने पर सम्पूर्ण अन्धकार नष्ट हो जाता है जैसे अग्नि सम्पूर्ण काष्ठ को भस्म कर देते हैं और जिस प्रकार अत्यन्त प्रभाववाली हिरण्यगर्भनामक औषधि रोगी के घोरसन्निपातादि रोगों का विध्वंस कर देती है तैसेही श्रीभगवन्नाम के उच्चारण मात्रही से सब पाप समूल नष्ट हो जाते हैं। एकही बात को बारंबार कथन करने का नाम अभ्यास है यद्यपि इसको पहिले कहचुके हैं तौभी फिर स्मरण करादिया है यह अभ्यास निर्दोष उदाहरण और युक्तियों द्वारा स्पष्ट दिखादिया है अब आप क्या चाहते हैं हाँ रहा गति सामान्य वहभी स्कन्द पुराण में इस तरह कहा है कि एक समय कोई भक्त इस प्रकार श्रीभगवन्नाम के माहात्म्य को गान करता हुआ नमस्कार करता है कि मैं उन करुणासागर अच्युत भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूं कि कोई भय से डराहुआ एवं पापों से युक्त मृत्यु अथवा अन्य के वश होने से भी जिनके नाम का एकबार उच्चारण करते ही सब भय और सम्पूर्ण पापों से अपने आपही छूट जाता है। जैसे सिंह से डरे हुए। जङ्गली मृग अपने आपही अपने स्थान को छोड़ कर भाग जाते हैं तैसेही जो पापी पुरुष दूसरे के अधीन होकर भी श्रीभगवन्नाम का उच्चारण करता है तो उस पापी पुरुष को सम्पूर्ण पाप छोड़ देते हैं। श्रीनारदीय पुराण में कुछ और भी विशेष कहा है। जैसे भक्तों के पापों के हरण करने से श्रीभगवान के 'हरि' इस नाम का प्रादुर्भाव हुआ है। तैसेही दूसरे पुरुषों के धन आदि के हरण करने से चोरको भी हरि कह सकते हैं। कभी किसी पुरुष के घरमें

चोरों के घुसतेही डरके मारे चोर न कहकर चोर के बहाने से भी जो पुरुष हरि इस प्रकार एकवार भी उच्चारण करता है तो वह पुरुष माता के मार्ग अर्थात् कोख को छोड़ कर सीधा हमारी पदवी को अर्थात् हमारे लोक को पधारता है। इस प्रकार गतिसामान्य का निरूपण सुनकर, वादी बोले कि आपतो पहिलेही उत्तर देचुके हैं कि भक्ति, श्रद्धा, अनुताप, ज्ञान और आवृत्ति करने वाला पुरुषही श्रीभगवन्नाम के उच्चारण करतेही सम्पूर्ण पापों से छूट कर मुक्त होता है तो बतलाइयेगा कि जब अभ्यासवाक्य और गतिसामान्य वाक्यों में श्रद्धा, भक्ति इत्यादिकों का नाम निशानही नहीं है तब इन वाक्यों में कौन अधिकारी होगा। तब सिद्धान्ती श्रीमद्भागवतादि पुराण वाक्यों के अनुसार इस प्रकार उत्तर देते हैं कि पहिले वाक्यों में जिस पुरुष को मृत्यु पासमें आगई है वही पुरुष भगवन्नामापराध के बिनाही जो भगवन्नाम का उच्चारण करैगा वही पापों से शीघ्र मुक्त होगा और वही पुरुष इन वाक्यों में मुख्य अधिकारी समझना चाहिये। यही बात श्रीमद्भागवत ६ षष्ठस्कन्ध ३ तीसरे अध्याय के २४ चौबीसवें श्लोक से स्पष्ट आती है कि यमराज अपने दूतों से बोले कि—हे बेटाओ! श्रीहरि नाम के उच्चारण के माहात्म्य को देखिये। जिस कारण से श्रद्धादिपूर्वक अच्छी तरह से श्रीभगवान् नारायण का नाम न लेकर हे नारायण! ऐसे बेटा को पुकार कर विशुद्ध नहीं लेकिन महापापवाला स्थिर चित्त नहीं किन्तु मरते मरते मरण के दुःख से विवश जो अजामिल उसके पापों का ही नाश भया होय यह बात नहीं, किन्तु मुक्ति को भी प्राप्त होगया तिससे जैसे बने तैसेही भगवन्नामोच्चारण मुक्ति का देनेवाला है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत ३ तृतीय स्कन्ध ९ नवमें अध्याय के १५ पन्द्रहवें श्लोक में ब्रह्माजी भी कहते हैं कि हम उन जन्म रहित श्रीभगवान् की शरण में प्राप्त होते हैं। कि जिनके अवतार गुण और कर्मोंके सूचक अर्थात् जनाने वाले देवकीनन्दन सर्वेश और गिरिधारी इत्यादि नामों को प्राण के निकलने के समय विवश होकर जो पुरुष केवल उच्चारण करते हैं वे पुरुष अनेक जन्मों के पापों को एकवारगी छोड़कर आवरणों से रहित सत्य स्वरूप श्रीभगवान् को प्राप्त होते हैं। श्रीनारदीय पुराण में कहा है कि विशेष

करिकें रजस्वला अर्थात् मासिकधर्मवाली चाण्डालिनी के साथ भोग करता हुआ ब्राह्मण मदिरा से पकाये हुए अन्नका भी भोजन करता है तौभी जो मरण के समय हरि का उच्चारण करता हुआ प्राणों का परित्याग करता है तब पहिले पाप से शीघ्र छूट जाता है इसमें विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है और इस निश्चय से मरण के समय श्रद्धादिकों का उत्पन्न नहीं होना ठीकही है क्योंकि मरण के समय तो भगवन्नाम का उच्चारणही अत्यन्त दुर्लभ है तिस कारण से किसी वाक्य के साथ किसी वाक्य का विरोध नहीं हैं, इस प्रकार सब हमारा कथन अच्छी तरह स्थिर है अर्थात् किसीके हटाये नहीं हट सकता है।

ननु समस्तानामेव भगवन्नाम्नामेतादृशं सामर्थ्यमुत व्यस्तानामपि नतावत्समस्तानामेव अवशेनेत्यादिविधिना विरोधात् नह्यवशेन पुरुषेण समस्तानामुच्चारणं सम्भवति ॥ अथ व्यस्तानां तत्रापि किं सर्वेषामेवोत केषांचिदेव तत्र यदि सर्वेषामपि तर्हि नरकसृष्टेरानर्थक्यं प्रसज्येत नह्यजातिवधिरस्य कस्याप्येतत्सम्भाव्यते यन्नामसहस्रमध्ये किंचिदपि कदाचिदपि कथंचिन्न शृणोति न गृह्णाति अपिच यदि सर्वेषां समानं सामर्थ्यम । तर्हि एकेनैव पुरुषार्थसिद्धेरन्येषामानर्थक्यं प्रसज्येत ॥ अन्यच्च समानमहिम्नां नाम्नां समाहारे तन्महिम्नामपि समाहारात् एकस्य श्रीरामनाम्नोनामसहस्रसाम्याभिधानं नावकल्पते नहि प्रदीपसहस्रस्य यावान् प्रकाशस्तावानेकस्य प्रदीपस्य भविष्यति साम-

र्थ्यस्य वैषम्येतु भवत्येव यावत्खलु खद्योतसहस्रस्य तेजस्तावदेकस्यापि प्रदीपस्येति ॥ अथ केषांचिदेव तर्हि "सर्वार्थशक्तियुक्तस्य देवदेवस्य चक्रिणः ॥ यच्चाभिरुचितं नाम तत्सर्वार्थेषु योजयेत्" इति श्रीविष्णुधर्मगतवचनविरोधः । अन्येषांनाम्नामानर्थक्यं च तदवस्थमेवेति अत्रोच्यते समाधानम् सर्वेषामपि भगवन्नाम्नां प्रत्येकमेतादृशं सामर्थ्यम् । नच नरकसृष्टेरानर्थक्यं दग्धेऽपि कथञ्चित्प्राचीने तदुत्तरकालभाविभिरंहोभिर्महदवमानैश्च नरकपातस्यापि सम्भवात् नचावृत्तिगुणकमेव कीर्त्तनं सर्वस्यापि भविष्यतीति कश्चिदस्ति नियमः अतएव भरतदेवस्यापि ऋषभदेवेनानुगृहीतस्यापि प्रतिबद्धापरोक्षानुभवत्वादन्तरायैरत्यन्तसमुच्छिन्नभगवदुपासनत्वाच्च तदुत्तरकालभाविना मृगासक्तिरूपेण कर्मणा निकृष्टदेहारम्भः ॥ अथवा मृगत्वमपि तज्जातिस्मरणवैराग्यभूतदयाऽऽदिगुणोपेतत्वान्मोक्षानुकूलमेवेति न तदारम्भकस्य कर्मणोनिवृत्तौ प्रयतते भक्तिः ॥ जयविजययोश्च वैकुण्ठवासिनोरपि ब्रह्मविदवमानादवःपतनं ब्रह्मविदवमानजनितं हि दुरितं दुरत्ययं भगवदुपासनेनापि भगवद्भक्तावमानजनितञ्च ॥ प्रपञ्चितं चैतत्तृतीयस्कन्धे " सोऽहं भवत्समुपलब्धसु-

तीर्थकीर्त्तिश्चिन्त्यां स्ववाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्ति " मित्यादिना नवमस्कन्धे चाम्बरीषोपाख्याने " अहं भक्तपराधीनोह्यस्वतन्त्रइव द्विज ॥ साधुभिर्ग्रस्तहृदयो-भक्तैर्भक्तजनप्रिय " इत्यादिना

फिर वादी शङ्का करते हैं कि सब भगवान् के नामों की यह सामर्थ्य है कि सब पापों को नाश कर भगवत्पद की प्राप्ति कराय देना कि एक एक श्रीभगवन्नाम की पूर्वोक्त सामर्थ्य है यदि कहिये कि सब भगवन्नामों को पूर्वोक्त सामर्थ्य है तो अवश होकर भी श्रीभगवन्नाम लेवें तौभी सब पापों का नाश होकर भगवत्पदकी प्राप्ति होती है इस कथन से विरोध आता है। क्योंकि अवश पुरुष सब श्रीभगवन्नामों का उच्चारण नहीं कर सकता है इससे जब पुरुष सब भगवन्नामों का उच्चारण करैगा तबही पुरुष पापों से छूटकर मुक्त होगा यह बाततो नहीं कह सकते हैं। और जो आप कहें कि एक एक श्रीभगवन्नामकी पूर्वोक्त सामर्थ्य है तौ हम आपसे पूछते हैं कि एक एक श्रीभगवन्नामों के बीचमें भी सबही श्रीभग-वन्नामों में पूर्वोक्त सामर्थ्य है कि कोई विशेष विशेष रामकृष्णादि नामोंमें पूर्वोक्त अर्थात् भक्तोंके पापोंका नाशकर भक्तोंको मुक्तकर देना रूप सामर्थ्य है तिसमें भी जो आप कहें कि सब भगवन्नामों की मुक्त करने की सामर्थ्य है तो नरकों की सृष्टि व्यर्थ होजायगी, क्योंकि जन्म से ही जो पुरुष बहिरा है उस पुरुष को छोड़कर अन्य किसी पुरुष की यह संभावना नहीं हो सकी है कि हजारों नामों के बीचमें कोई भी नाम किसी भी कालमें किसी तरह न सुना होय और न लिया होय—और भी वादी कहते हैं कि जो सब श्रीभगवन्नामों की तुल्यही सामर्थ्य है तो एकही नामके लेने से मोक्षकी सिद्धि हो जायगी फिर अन्य नामोंका उच्चारण करना व्यर्थ है औरभी सुनिये—तुल्य महिमा वाले नामोंके मध्यमें एक राम नाम अथवा कृष्णनाम की महिमा हजार नामोंको बराबर कही है सो यह कहना ठीक नहीं होगा। क्योंकि लोक में देखा

गया है कि जैसा हजार दीपों का प्रकाश विशाल होता है वैसा एक दीपका प्रकाश नहीं हो सकता है तैसेही एक श्रीभगवन्नाम हजार श्रीभगवन्नामों की बराबरी नहीं कर सक्ता है। और सब श्रीभगवन्नामों की सामर्थ्य किसीमें अधिक है और किसी में थोड़ी है ऐसा मानने पर कहना ठीक इस प्रकार हो सकता है कि-अधिक सामर्थ्य वाले एक श्रीभगवन्नाम का उच्चारण थोड़ी सामर्थ्य वाले हजार नामों के उच्चारण के बराबर हो सकता है। जैसे लोकमें निश्चय यह बात प्रत्यक्ष देखी गई है कि हजार पटबीजनाओं का मिलकर जितना प्रकाश होता है उतना ही प्रकाश एक दीपक का होता है।

वादी फिर शङ्का करते हैं कि—जो आप यह कहें कि सब श्रीभगवन्नामों के बीचमें किसी किसी श्रीभगवन्नाम को मुक्त करने की सामर्थ्य है और किसी किसी को नहीं है तो विष्णुधर्म के वाक्य से इस प्रकार विरोध आता है कि सब पदार्थों को देनेवाली शक्ति से युक्त देवताओं के देवता श्रीभगवान्का जो नाम जिसको अच्छा लगे वह नाम ऐहिक अथवा पारमार्थिक वस्तुकी प्राप्ति के लिये उच्चारण करै। तात्पर्य विष्णुधर्म के वाक्य से स्पष्ट यह आता है कि सब भगवन्नामों के मध्यमें एक एक श्रीभगवन्नाम की ऐहिक अथवा पारमार्थिक वस्तु देने की सामर्थ्य है और यदि रामकृष्णादि विशेष विशेष नामों का सामर्थ्य मानोगे तो अन्य श्रीभगवन्नाम व्यर्थ ही होंगे। बहुत आडम्बर से युक्त वादी के इस पूर्वपक्षको सुनकर सिद्धान्ती समाधान करते हुए बहुत गम्भीरता से बोले कि! जितने श्रीभगवन्नाम हैं उन सब श्रीभगवन्नामों के मध्यमें हर एक श्रीभगवन्नाम भक्तों के पापों को नष्टकर भक्तों को इस लोकके और परलोक के पदार्थों को देता हुआ भक्तों को मुक्त करने की सामर्थ्य रखता है। और श्रीभगवन्नाम के उच्चारण करते करते किसी पुरुष के किसी तरह पुराने पाप भस्म भी होगये हैं। लेकिन उसके आगेके कालमें होने वाले पापों से और महात्माओं के अनादर से उसको नरक पातभी सम्भव है। इससे नरकों की सृष्टि व्यर्थ नहीं हो सकती है। वादी सिद्धान्ती की बात सुन बोले कि,

फिर श्रीभगवन्नाम का उच्चारण कर होने वाले पाप और महात्माओं के अनादर से होने वाले पापों को भक्त भस्म कर देगा तो नरकों की सृष्टि व्यर्थ ही होगी—वादीकी शङ्का सुन सिद्धान्ती बोले कि हमारी बातभी सुनिये आपके चित्तमें ऐसी वासना भरी हुई है कि श्रीभगवन्नाम के उच्चारण से पापों को भक्त भस्म करै। और फिर भी जो पाप आजांय तौ फिर श्रीभगवन्नामका उच्चारण कर पापों को नष्ट करदे। इसके विषयमें और कुछ कहते हैं वह यह है कि सब मनुष्य बारंबार श्रीभगवन्नामका उच्चारण करैं, यह कोई विशेष नियम नहीं है। इस विषय में थोड़ासा श्रीऋषभदेवजी के पुत्र श्रीभरतमहाराज का चरित्र दिखाते हैं कि जैसे श्रीभरतमहाराजजी को श्रीभगवान् के भजन के बीचमें प्रजा पालन भी परम धर्म है यह वासना बारंबार चित्तमें उठती रही, उसकी निवृत्ति के लिये श्रीभगवान् की इच्छा ही से श्रीभरतजी को मृग में आसक्ति हुई। और मृग में आसक्ति होने से श्रीभगवान् का साक्षात् अनुभव रुक गया और मृगासक्ति से उत्पन्न अनेक विघ्नों से श्रीभगवान् की उपासनाभी अत्यन्त निर्मूल होगई और फिर भगवान् की उपासना नष्ट होने से निकृष्ट मृगका शरीर धारण करनाही पड़ा—अथवा श्रीभरतजी के विषय में यहभी समाधान हो सकता है। कि जिस समय श्रीभरतजी को मृग शरीर की प्राप्ति हुई उसीक्षण निकृष्ट मृग जाति के स्मरण से वैराग्य और प्राणियों के ऊपर दया उत्पन्न हुई इसीसे सूखे पत्ता चबायकर अन्तमें श्रीभगवन्नामका उच्चारण कर मृग शरीर को छोड़ तीसरे जन्म में ब्राह्मण शरीर से श्रीभरतजी मुक्त होगये इससे श्रीभरतजी को मृग शरीर की प्राप्ति मोक्ष के अनुकूलही हुई—इसी हेतुसे भक्ति महारानी ने मृग शरीर के बनाने वाले मृगासक्ति रूप कर्म के हटाने में उपाय नहीं किया पहिले समाधान में कुछ न्यूनता आती रही इसी से दूसरा समाधान किया और इसी समाधान को ठीक समझना चाहिये। श्रीभगवान् की उपासना से भी ब्रह्मवेत्ता सनकादिकों के तिरस्कार से उत्पन्न हुए अपराध औरभी सामान्य भगवान् के भक्तों के तिरस्कार से उत्पन्न अपराध नहीं दूर होसकते हैं, इसी से श्रीवैकुण्ठ में रहने वाले जय

और विजय दोनों श्रीभगवान् के पार्षदों का भी ब्रह्मवेत्ता सनकादिकों के तिरस्कार से असुर योनि में जन्म हुआ, इसी बातका ३ तृतीय स्कन्ध के १६ सोलहवें अध्याय में इस प्रकार विस्तार किया है कि श्री भगवान् सनकादिकों से बोले कि आप सब ब्राह्मण देवों को प्रसन्नता से प्राप्त सुन्दर पवित्र कीर्त्तिवाले हम आपलोगों के विरुद्ध आचरण करने वाले बाहु स्थानीय लोकेश्वर अर्थात् इन्द्रादिक भी क्यों न होंय उनको भी मार सकते हैं तो पादस्थानीय भृत्यादि जय-विजयों की तो बातही क्या है। श्रीमद्भागवत ९ नवम स्कन्ध ४ चौथा अध्याय अम्बरीष के चरित्र में भी श्रीभगवान् दुर्वाशा ऋषिजी से बोले कि हे ब्राह्मणदेवजी हम जीवकी तरह भक्तों के आधीन हैं साधु भक्तजनों से ग्रस्त हृदय वाले और भक्तजनों के प्यारे हैं—इत्यादि

वेनस्य तु भगवन्निन्दाप्रतिबद्धसामर्थ्यं सकृत्कीर्त्तनमात्रवर्त्यमानमपि न पापक्षयायालं शिशुपालादीनां पुनर्निर्भरवैरानुबन्धपरिकल्पितसंपदःसमाधेरिव निन्दादोषस्यापि दग्धत्वात्पुरुषार्थप्राप्तिरिति स्वयमेव सप्तमाद्ये समर्थितं श्रीशुकेन ॥ यदप्युक्तम् । एकेनैव पुरुषार्थसिद्धेरन्येषामानर्थक्यमिति तदप्ययुक्तम् पुरुषभेदेन सर्वेषामपि पुरुषार्थसाधनत्वोपपत्तेः यत्तु समानमहिम्नां समाहारे तत्तन्महिम्नामपि समाहारान्नैकस्य तादृशोमहिमेति । तदपि परिच्छिन्नप्रभावेषु प्रदीपादिषु घटते न पुनर्निरंकुशमहिमसु भगवन्नामसु न खलु चिन्तामणीनां निचयस्य एकस्य वा चिन्तामणेः कल्पशाखिनां वनस्यैकस्य वा कल्पशाखिनः । कामधेनूनां यूथस्यैकस्या

वा कामधेनोः कश्चिदस्ति विशेषः । समाहृतानामुच्चारणमपि नानर्थकं संस्कारप्रचयहेतुत्वात् एकस्यैवोच्चारणप्रचयवत् ॥ तस्मात् श्रद्धाभक्तिज्ञानवैराग्याभ्यासदेशकालविशेषादिनिरपेक्षं भगवन्नामकीर्त्तनमेव नामापराधाभावे सति महदवमानातिरिक्तमप्रारब्धं प्राचीनमंहः सर्वमेव संहरति आवर्त्त्यमानं पुनर्दुर्वासनाविध्वंसद्वारेण श्रद्धाभक्तिवैराग्यज्ञानान्युत्पादयदपवर्गसाधनं प्रारब्धपापनिवर्त्तकं च कदाचिदुपासकेच्छावशात् महदवमानस्य तु भोगएव निवर्त्तकस्तदनुग्रहोवा न पुनरन्यत्किंचिदिति स्थितम् नामापराधसत्त्वे तु बहुकालेन आवर्त्त्यमानानि भगवन्नामान्यघं हरन्तीति विज्ञेयं मनीषिभिरित्यलं पल्लवितेन ॥ किञ्च श्रीभगवन्नाम विषयेऽन्यदपिलिख्यते ॥ नामरूपगुणपरिकरलीलाश्रवणे कीर्त्तने वा यद्यप्येकतरेणाऽपि व्युत्क्रमेणाऽपि सिद्धिर्भवत्येव तथाऽपि प्रथमं श्रीभगवन्नाम्नः श्रवणमुच्चारणंवाऽन्तः करणशुद्ध्यर्थमपेक्षितम् ॥ शुद्धेचान्तःकरणे रूपश्रवणरूपकीर्त्तनाभ्यां तदुदययोग्यता भवति सम्यगुदिते च रूपे गुणानां स्फुरणं संपद्यते ॥ सम्पन्नेच तस्मिन् परिकरवैशिष्ट्येन तद्वैशिष्ट्यं संपद्यते ततस्तेषु नामरूपगुणपरिकरेषु सम्यक्स्फुरितेषु लीला-

नां स्फुरणं सुष्ठु भवतीत्यपेक्ष्य साधनक्रमो लिखितः ॥

वादी सिद्धान्तीजी से फिर शङ्का करते हैं कि आपतो यह कहते हैं कि किसी प्रकार एकवारभी लियागया श्रीभगवन्नाम पापी के पापों को नष्ट कर देता है यह उक्ति आपकी ठीक नहीं है। क्योंकि वेन महाराज ने तो निन्दा में कईवार श्रीभगवन्नाम लिया लेकिन उसके पाप नष्ट नहीं हुए यह क्या बातहै? तब सिद्धान्ती उत्तर देते हैं कि नामी श्रीभगवान् की निन्दा करने से ही नाम की पाप नाशक शक्ति रुक जानेसे वेन के पाप नष्ट नहीं हुए। और दूसरी बात यह भी है कि कंसादिकों ने आवेश पूर्वक जो वैर किया इससे निन्दा रूपी दोष को भस्म कर श्रीभगवन्नाम ने उनको मुक्त कर दिया। वेन में आवेश न होने से श्रीभगवन्नाम ने वेन को मुक्त नहीं किया। शिशुपालादिकों की तो श्रीकृष्ण में अच्छी तरह वैर करनेसे समाधि की तरह भगवदाकार वृत्ति होने से निन्दा दोष नष्ट होकर श्रीभगवत्प्राप्ति हुई। इसी बातका समर्थन श्रीशुकदेवजी ने सप्तमस्कन्ध के पहले अध्याय में किया है। सिद्धान्ती कहते हैं कि आपने कहा कि जब एक ही श्रीभगवन्नाम से भगवत्प्राप्ति हो जाती है तब अन्य श्रीभगवन्नाम व्यर्थ हैं यह आपका कथन ठीक नहीं है। क्योंकि संसार में अनेक पुरुष हैं और—

भिन्नरुचिर्हिलोकः

इस न्यायसे लोगों की भिन्न भिन्न नामों में रुचि होनेसे सब ही श्री भगवन्नाम सार्थक हैं निरर्थक एक भी नहीं है, फिर सिद्धान्ती बोले कि आप ने जो पूर्व में कहा— कि बराबर महिमा वाले श्रीभगवन्नामों के समूह में उन उन श्रीभगवन्नामों की महिमाओं का भी समूह होने से एक श्रीभगवन्नाम की ऐसी उत्कट महिमा नहीं हो सकती, जैसे कि एक राम नाम हजार नामों के तुल्य है, यह भी आप का कथन थोड़ी प्रभावाले दीपादिकों के विषय में तो घट सकता है, लेकिन अपार महिमा वाले श्रीभगवन्नामों के विषय में नहीं घट सकता है। और भी सुनिये जैसे लोक में देखा गया है कि कोई याचक, अनेक चिन्तामणि, अनेक कल्प वृक्ष, और अनेक

कामधेनुओं के समूह से अथवा एक चिन्तामणि एक कल्पवृक्ष और एक कामधेनु से प्रार्थना करै। तब उसको पुत्रादि फल, एक और अनेकों से तुल्य ही मिलता है फलमें कोई विशेषता नहीं पाई जाती है। तैसे ही एक श्रीभगवन्नाम के लेने से अथवा अनेक श्रीभगवन्नामों के लेने से श्रीभगवन्नाम लेने वाले को तुल्य ही फल मिलता है। सिद्धान्ती की यह बात सुन वादी बोले कि अनेक श्रीभगवन्नामों का उच्चारण व्यर्थ होगा। तब सिद्धान्ती बोले कि जैसे एकही श्रीभगवन्नाम के बारम्बार उच्चारण करने से ईश्वर विषयक भावनारूप संस्कार पुष्कल अर्थात् पूर्ण हो जाता है तैसे ही बारम्बार अनेक भगवन्नामों के उच्चारण करने से श्रीभगवान् को विषय करता हुआ भावना रूप संस्कार अत्यन्त पुष्ट होता है इसीसे अनेक भगवन्नामों का उच्चारण व्यर्थ नहीं हो सकता है। इससे श्रद्धा अर्थात् शास्त्र में कहे हुए परलोकादि सत्य हैं ऐसी बुद्धि, भक्ति, अर्थात्—अपने अपने इष्ट देवमें अनुराग परमात्मा को विषय करने वाला ज्ञान—वैराग्य अर्थात् विषयों में प्रीति न करना—अभ्यास अर्थात्—अनेक बार श्रीभगवन्नाम का उच्चारण—देश अर्थात्—श्रीवृन्दावनादि शुभ तीर्थ—कालविशेष अर्थात्—प्रातःकालादि पवित्र समय और आदि शब्द से धर्मशास्त्र में कही हुई शौचादि क्रिया—इत्यादि पदार्थों की अपेक्षा नहीं करता हुआ श्रीभगवन्नाम संकीर्त्तन दशनामापराधों के न होने से पुराणादि कों में जब साक्षात् श्रीभगवान् के भक्त जय और विजय दोनों पार्षदों का भी महात्मा श्रीसनकादिकों के तिरस्कार से अधःपात सुनने में आया है तब सामान्य पुरुष की तो बात ही क्या कहनी चाहिये। इससे महात्माओं के अपमान से पैदा हुए पाप को छोड़ कर और श्रीभगवन्नाम के उच्चारण काल के पीछे भी देह की स्थिति रहती है इससे निश्चय होता है कि प्रारब्ध कर्म के विना देह तो नहीं रह सकता है। इससे प्रारब्ध कर्म को भी छोड़ कर सम्पूर्ण पहिले किये हुए पापों का नाश कर देता है। बारंबार लिया गया श्रीभगवन्नाम दुष्ट वासनाओं का नाश करता हुआ श्रद्धा, भक्ति, वैराग्य और ज्ञान को उत्पन्न करता हुआ मोक्ष का साधन होता है और किसी समय श्रीभगवन्नाम के उच्चारण करते

वाले महानुभाव पुरुष की इच्छा के वश से श्रीभगवन्नाम प्रारब्ध पाप की निवृत्ति भी कर देता है। महात्माओं के अपराध से उत्पन्न हुए पाप तो भोगने से ही छूटते हैं। अथवा जिन महात्माओं के अपराध से जो पाप लगता है उस पाप की निवृत्ति तो उन्हीं महात्माओं की कृपा से हो सकती है और कोई उपाय नहीं है। नामापराधोंके रहते हुए तो बहुत काल तक बारंबार लिये हुए श्री भगवन्नाम पापों को नष्ट करते हैं, ऐसे ही बुद्धिमान् पुरुषों को जानना चाहिये। बहुत विस्तार से क्या प्रयोजन है। श्रीभगवन्नाम के विषय में और भी लिखते हैं। नाम-श्रीकृष्णादि, रूप-श्याम वर्णादि, गुण-भक्तवात्सल्यादि, परिकर-शृङ्गार रस में श्रीरङ्ग दैव्यादि और लीला-रासादि इन्होंके श्रवण और कीर्त्तन में यद्यपि क्रम करिकें किसी एक के श्रवण कीर्त्तन अथवा उलटे पलटे श्रवण और कीर्त्तन से भी सिद्धि होती है तौ भी अन्तःकरण की शुद्धि के लिये सब से पहिले श्रीभगवन्नाम का श्रवण और उच्चारण करना परमावश्यक है। अन्तःकरण के शुद्ध होने पर श्रीभगवान् के रूप के श्रवण और श्रीभगवान् के रूप के कीर्त्तन से श्रीभगवान् के रूप के उदय की योग्यता होती है। श्रीभगवान् के रूप की अच्छी तरह स्फूर्त्ति होने पर श्रीभगवान् के गुणों की स्फूर्त्ति होती है और श्रीभगवान् के गुणों की अच्छी तरह स्फूर्त्ति होते ही श्रीरङ्गदैव्यादि परिकर से युक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र विशेष रूप से साधक के हृदय में सुशोभित होते हैं। इसके पीछे श्रीभगवान् के नाम,रूप,गुण और परिकरों की अच्छी तरह स्फूर्त्ति होने पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की रासादि लीलाओं की स्फूर्त्ति रसिक जनों के अन्तःकरण में अच्छी तरह होने लगती है। इस बात को विचार कर ही यहाँ पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के प्राप्ति साधन की रीति लिखी गई है।

अथ पुनरपि भक्तानां श्रीभगवन्नाम्नि रुच्यर्थं मन्यान्यपि श्रीभगवन्नाममहात्म्यबोधकानि पद्यानि लिख्यन्ते तथाहि श्रीगरुड़पुराणे। नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः। तावत्कर्त्तुं न शक्नोति पातकं

पातकी जनः ॥ १ ॥ हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयाऽपि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥२॥ श्रीगीतायाम्। यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि ॥ ३ ॥ मनुस्मृतौ जप्येनैव तु संसिध्येद् ब्राह्मणोनात्र संशयः। कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रोब्राह्मणउच्यते ॥४॥ बृहन्नारदीये लुब्धकोपाख्यानान्ते नराणां विषयान्धानां ममताकुलचेतसाम्। एकमेव हरेर्नाम सर्वपापविनाशनम् ॥ ५ ॥ पाद्मे श्रीयमब्राह्मणसंवादे। कीर्त्तनादेव कृष्णस्याविष्णोरमिततेजसः। दुरितानि विलीयन्ते तमांसीव दिनोदये ॥६॥ नान्यत्पश्यामि जन्तूनां विहाय हरिकीर्त्तनम्। सर्वपापप्रशमनं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तम ॥७॥ कात्यायनसंहितायाम् अर्थवादं हरेर्नाम्नि सम्भावयति योनरः। सपापिष्ठोमनुष्याणां नरके पतति स्फुटम् ॥८॥ श्रीविष्णुधर्मे ॥ अथ पातकभीतस्त्वं सर्वभावेन भारत। विमुक्तान्यसमारम्भोनारायणपरोभव ॥ ९ ॥ गोविन्देति समुच्चार्य पदं त्रापितकिल्बिषः। त्रायतेबन्धुर्विशुद्धात्मा गोविन्दत्वमुपेयिवान् ॥ १० ॥ अतिपातकयुक्तोऽपि ध्यायन्निमिषमच्युतम्। भूयस्तपस्वी भवति पङ्क्तिपावनपावनः ॥११॥ आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः। इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयोनारायणः सदा ।१२

नारायणेति शब्दोऽस्ति, वागस्ति वशवर्त्तिनी। तथाऽपि नरके घोरे पतन्तीति किमद्भुतम् ॥१३॥ वैशम्पायन-संहितायाम् ॥ सर्वधर्मबहिर्भूतः सर्वपापरतस्तथा। मुच्यते नात्र सन्देहो विष्णोर्नामानुकीर्त्तनात् ।१४। यथा पाद्मे ॥ नामापराधभञ्जनस्तोत्रे—नामैकं यस्य वाचि स्मरणपथगतं श्रोत्रमूलं गतं वा शुद्धं वाऽशुद्धवर्णं व्यवहितरहितं तारयत्येव सत्यम् ॥ तच्चेद्देहद्रविणजन-तालोभपाषण्डमध्ये निक्षिप्तं स्यान्न फलजनकं शीघ्र-मेवात्र विप्र इति ॥१५॥ देहादिलोभार्थं ये पाषण्डा-गुर्ववज्ञादिदशापराधयुक्तास्तन्मध्ये इत्यर्थः विष्णुधर्मे हरिभक्तिसुधोदये चोक्तं श्रीनारदेन-अहोसुनिर्म्मला यूयं रागोहि हरिकीर्त्तने। अविधूय तमः कृत्स्नं नृणां नोदेति सूर्यवत् ॥१६॥ यन्नामकीर्त्तनं भक्त्या विलाप-नमनुत्तमम्-मैत्रेयाशेषपापानां धातृनामिव पावकः।१७। यस्मिन्न्यस्तमतिर्नं याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने। विघ्नोयत्र निवेशितात्ममनसोव्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः॥ मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां पुंसां ददात्यव्ययः किञ्चित्रं यदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्त्तिते ॥१८॥ विष्णुधर्मोत्तरे-सायं प्रातस्तथा कृत्वा देवदेवस्य कीर्त्त-नम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥ १९ ॥

नारायणोनाम नरो नराणां प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम् । अनेकजन्मार्जितपापसञ्चयं हरत्यशेषं श्रुतमात्रएव ॥२०॥ स्कान्दे ॥ गोविन्देति तथा प्रोक्तं भक्त्या वा भक्तिवर्जितैः । दहते सर्वपापानि युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥२१॥ गोविन्दनाम्ना यः कश्चिन्नरोभवति भूतले कीर्त्तनादेव तस्यापि पापं याति सहस्रधा ।२२ उक्तं च प्रह्लादेन नारसिंहे ॥ ते सन्तः सर्वभूतानां निरुपाधिकबान्धवाः । ये नृसिंह भवन्नाम गायन्त्युच्चैर्मुदान्विताः ॥२३॥ सर्वव्याधिनाशित्वम् बृहन्नारदीये भगवत्तोषप्रश्ने ॥ अच्युतानन्द गोविन्द नामोच्चारणभीषिताः । नश्यन्ति सकलारोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥२४॥ लघुभागवते-किं तात वेदागमशास्त्रविस्तरैस्तीर्थैरनेकैरपि किं प्रयोजनम् । यद्यात्मनोवाञ्छसि मुक्तिकारणं "गोविन्द गोविन्द" इति स्फुटं रट ॥२५॥ पराक-चान्द्रायण-तप्तकृच्छ्रैर्न देहशुद्धिर्भवतीह तादृक् कलौ सकृन्माधवकीर्त्तनेन गोविन्दनाम्ना भवतीह यादृक् ॥२६॥ श्रीहरिभक्तिसुधोदये-नचैवमेकं वक्तारं जिह्वा रज्जाति वैष्णवी । आश्राव्य भगवत्ख्यातिं जगत् कृत्स्नं पुनाति हि ॥२७॥ सर्वापराधभञ्जनत्वम् ॥ विष्णुयामले श्रीभगवदुक्तौ-मम नामानि लोकेऽस्मिन् श्रद्धया

यस्तु कीर्त्तयेत् । तस्यापराधकोटीस्तु क्षमाम्येव न संशयः ॥२८॥ सर्वतीर्थाधिकत्वम् । स्कान्दे ॥ कुरुक्षेत्रेण किं तस्य किं काश्या पुष्करेण वा, जिह्वाग्रे वसते यस्य "हरि" रित्यक्षरद्वयम् ॥२९॥ सदा सर्वत्र सेव्यत्वम् विष्णुधर्मे नक्रबन्धूपाख्याने ॥ न देशनियमस्तस्मिन् न कालनियमस्तथा । नोच्छिष्टादौ निषेधोऽस्ति श्रीहरेर्नाम्नि लुब्धक ॥३०॥ स्कान्दे पाद्मे वैशाखमाहात्म्ये विष्णुधर्मोत्तरे च ॥ चक्रायुधस्य नामानि सदा सर्वत्र कीर्त्तयेत् । नाशौचं कीर्त्तने तस्य सपवित्रकरोयतः ॥३१॥ वैश्वानरसंहितायाम्-न देशकालनियमो न शौचाशौचनिर्णयः । परंसङ्कीर्त्तनादेव रामरामेति उच्यते ॥३२॥ वैष्णवचिन्तामणौ श्रीयुधिष्ठिरं प्रति नारदवाक्यम् ॥ न देशनियमोराजन् न कालनियमस्तथा । विद्यते नात्र सन्देहोविष्णोर्नामानुकीर्त्तने ॥३३॥ कालोऽस्ति दाने यज्ञे च स्नाने कालोऽस्ति सज्जपे । विष्णुसंकीर्त्तने कालोनास्त्यत्र पृथिवीतले ॥३४॥ अथ श्रीभगवन्नामार्थवादकल्पनादूषणबोधकान्यन्यान्यपि पद्यानि लिख्यन्ते ॥ ब्रह्मसंहितायां बौधायनं प्रति श्रीभगवदुक्तौ यन्नामकीर्त्तनफलं विविधं निशम्य न श्रद्दधाति मनुते यदुतार्थवादम्—योमानुपरतमिह दुःखचये क्षिपामि

संसारघोरविविधार्त्तिनिपीडिताङ्गम् ॥३५॥ ईदृशे नाम-माहात्म्ये श्रुतिस्मृतिविनिश्चिते कल्पयन्त्यर्थवादं ये ते यान्ति घोरयातनाम् ॥३६॥ श्रीमहाभारते--उद्योगपर्वणि संजयंप्रतिश्रीकृष्णवचनम् ॥ ऋणमेतत्प्रवृद्धं मे हृदया-न्नापसर्पति। यद्गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवा-सिनम् ॥३७॥

इसके पीछे फिरभी भक्तजनों को रुचिको बढ़ाने के लिये और भी भगवन्नाम माहात्म्य को जनाने वाले पुराण एवं संहिता के श्लोकों को लिखते हैं श्रीगरुड़ पुराण में कहा है कि श्रीहरि के नाम की पापीके पापों के नाश करने में जितनी शक्ति विद्यमान है पापी पुरुष उतने पाप करने के लियेही समर्थ नहीं हो सकता है। सारांश यह है कि पापी चाहे कितने ही पाप क्यों न करै लेकिन श्रीभगवन्नाम के लेते ही पापी पुरुष के सब पाप नष्ट हो जाते हैं क्यों कि श्रीभगवन्नाम में अनन्त शक्तियाँ हैं पापी कितने पाप कर सका है (१) जैसे इच्छा के विना भी छूने पर अग्नि भस्म कर देती है तैसे ही दुष्ट चित्त वाले पुरुषों करिके स्मरण को प्राप्त श्रीहरि भगवान् पापी के सब पापों को नष्ट ही कर देते हैं (२) श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन से कहते हैं कि सम्पूर्ण यज्ञों के बीच में जप रूप यज्ञ हम ही हैं (३) मनुस्मृती में कहा है कि ब्राह्मण अन्य मन्त्र से अथवा श्रीभगवान् के नाम मन्त्र से ही भले प्रकार सिद्ध होजाता है इसमें सन्देह नहीं है। ब्राह्मण सन्ध्योपासन से अन्य कर्म करै अथवा न करै तो भी मित्र नाम सूर्य हैं उपासना करने योग्य देवता जिसके, ऐसा ब्राह्मण कहा ही जाता है (४) बृहन्नारदीय पुराण में लुब्धक के उपाख्यान के अन्त में कहा है कि विषयों से अन्धे और ममता से घबड़ाये हुए चित्तवाले पुरुषों को केवल एक श्रीहरि का नाम ही सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाला है (५) पद्म पुराण में श्रीयम और ब्राह्मण के सम्वाद में कहा है

कि हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण देव जैसे दिन के उदय अर्थात् सूर्य के उदय होने पर अन्धकार अपने आप ही नष्ट होजाता है तैसे ही अनागेनती तेजवाले व्यापक श्रीकृष्ण के कीर्त्तन मात्र से ही सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं (६) और मैं श्रीहरि कीर्त्तन को छोड़ कर जीवों के सम्पूर्ण पापों को शान्त करने वाला दूसरा प्रायश्चित्त नहीं देखता हूं (७) कात्यायन संहिता में लिखा है कि जो पुरुष श्रीहरि के नाम में अर्थवाद (स्तुति मात्र) की सम्भावना करता है वह मनुष्यों के बीच में अत्यन्त पापी पुरुष अवश्यही नरक में गिरता है (८) श्रीविष्णुधर्म में कहा है कि हे भारत जो आप सब तरह पापों से डरे हुए हैं। तो सम्पूर्ण कार्यों के प्रारम्भों को ही जलाञ्जलि देकर अर्थात् सब कामों को छोड़ कर केवल श्रीनारायण के भजन में लग जाइये ॥ (९) श्रीगोविन्द इस पद का उच्चारण करते ही पापों से छूट कर शुद्ध अन्तःकरणवाला क्षत्रबन्धु श्रीगोविन्दको प्राप्त होगया ॥ (१०) अत्यन्त पापों से युक्तभी पुरुष जो पलक भर भी अच्युत का ध्यान करता हुआ प्रेम में मग्न होजाय तो फिरभी वह पुरुष पङ्क्तिओं को पवित्र करने वालों को भी पवित्र करने वाला तपस्वी होजाता है। (११) सम्पूर्ण शास्त्रों का मन्थन कर और बारंबार सब शास्त्रों का विचारकर यही एक तत्त्व सिद्ध हुआ कि जीव मात्रको सदा परमात्मा श्रीनारायण ही ध्यान करने योग्य हैं (१२) भगवान् श्रीव्यास कहतेहैं कि लोक में जब रटने के लिये श्रीनारायण नाम है। और नाम लेने की वाणी स्वाधीन है तोभी पुरुष नरक में पड़ते हैं यह बड़े आश्चर्य की बात है। (१३) वैशम्पायनसंहितामें कहा है कि जैसे कोई पुरुष सब धर्मों का परित्याग करनेवाला है तैसेही सब कुकर्मों में लगा हुआ है तोभी श्रीविष्णु के नाम केवारम्बार कीर्त्तन से अपने आपही पापों से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है (१४) जैसे पद्मपुराण के नामापराध भञ्जन स्तोत्र में कहा है कि— हे विप्र! केवल श्रीहरिभगवान् का शुद्ध वर्ण का अथवा अशुद्ध वर्ण वाला और अन्य अक्षरों के व्यवधान से रहित नाम जिस पुरुष की वाणी से कहा गया एवं चित्त से स्मरण में आगया और दूसरे वक्ताओं के होने पर अपने कानसे सुना गया तबभी उस पुरुष का उद्धार करही देते हैं यह

बात सत्य है किन्तु देहकी आरोग्यता के लिये, धन एवं कुटुम्बकी वृद्धि के लोभ के लिये जो पाषण्ड अर्थात् श्रीगुरुदेवजीके अनादर से आदि लेकर दश श्रीभगवन्नामापराधों से युक्त पुरुषों करिकें लियागया श्रीभगवन्नाम, जल्दी श्रीभगवन्नाम लेनेका मुख्य फल जो श्रीकृष्णचन्द्र में प्रेम होना उसको नहीं होने देगा (१५) श्रीविष्णु-धर्म और श्रीहरिभक्तिसुधोदय में श्रीनारदजी ने कहा है कि हेभक्त-जनो! आपलोग अत्यन्त स्वच्छ चित्त वालेहैं क्योंकि श्रीहरिभगवान् के कीर्त्तन में बड़ी प्रीति है, जैसे अन्धकार का नाश किये विना सूर्य का उदय नहीं होता है इसी प्रकार मनुष्यों के अज्ञान रूपी सम्पूर्ण अन्धकारों के नष्ट हुए विना श्रीहरिकीर्त्तन में रागभी नहीं हो सकता है। (१६) हे मैत्रेय जैसे अग्नि धातुओं को पिघला कर उन्हों के मल को नष्ट कर धातुओं को स्वच्छ बना देते हैं तैसेही भक्ति से किया गया सबसे उत्तम श्रीहरिनामकीर्त्तन जीवों के सम्पूर्ण पाप रूपी मलों को नष्टकर जीवों को शुद्ध कर देते हैं।

जिस पुरुष की बुद्धि श्रीहरि भगवान् में लग गई है वह पुरुष नरक में नहीं जाता है, जिनके स्मरण में स्वर्ग की प्राप्ति विघ्नरूप प्रतीति होतीहै, जिस ईश्वर में बुद्धि और मनको लगातेही पुरुष को ब्रह्माका सत्य लोक भी अत्यन्त तुच्छ ! मालूम पड़ता है, जो अव्यय अर्थात् निर्विकार परमात्मा निर्मल बुद्धिवाले अपने भक्तजनोंके चित्तमें स्थित होते ही अपने भक्तों को जो मुक्ति दे देते हैं, तो उन अच्युत भगवान् के नाम के कीर्त्तन होने पर जो पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें क्या आश्चर्य अथवा सन्देह है (१८) विष्णु धर्मोत्तर में कहा है कि जो कोई महानुभाव प्रातः काल और सायंकाल में ब्रह्मादि देवताओं के भी देव श्रीकृष्णका कीर्त्तन करते हैं वे महानुभाव पुरुष सब पापों से मुक्त होकर स्वर्ग लोक में पूज्य हो जाते हैं (१९) श्रीवामन पुराण का वचन है कि पृथ्वीमें नरन के बीच नारायण नामक नर नामी चोर कहे जाते हैं क्योंकि कानों में प्रवेश करते ही मनुष्यों के अनेक जन्मों से इकट्ठे किये हुए सम्पूर्ण पापों के समूह को एक दम चुरालेते हैं एवं जिस हरिनाम कीर्त्तन का ऐसा प्रताप है तो जो पुरुष जिह्वा

(जीभ) पाकर भी उनके नामका कीर्त्तन नहीं करते वे पुरुष अवश्य मन्द भागी हैं। (२०) स्कन्द पुराण में कहा है कि जैसे प्रलय काल के उत्पन्न हुए अग्नि पृथिव्यादि तीनों लोकों को नष्ट कर देते हैं तैसेही भक्तिवाले अथवा विना भक्तिवाले पुरुषों करिकें लिया गया गोविन्द, यह नाम सब पापोंको भस्म कर देते हैं। (२१) पृथ्वी में गोविन्द नाम से कोई पुरुष विख्यात है परन्तु आश्चर्य यह है कि उस पुरुष के हे गोविन्द! हे गोविन्द! ऐसे नाम पुकारनेसे भी हजारों प्रकार के पाप चले जाते हैं। (२२) नरसिंह पुराण में प्रह्लाद ने श्रीनरसिंह भगवान् से कहा है कि हे भगवन्! आनन्द से युक्त जो जो पुरुष ऊंचे स्वर करिकें— हे नृसिंह! हे नृसिंह! इस प्रकार आपके नाम को लेते हैं वे सबही पुरुष सब प्राणियों के बीचमें श्रेष्ठ और बिना उपाधि के बन्धु कहे जाते हैं (२३) श्रीभगवन्नाम सब व्याधियों का नाशक है यह बात बृहन्नारदीय पुराण में श्रीभगवान् के संतोष के प्रश्न में श्रीनारदजी बोले कि हम सत्य ही सत्य कहते हैं कि हे अच्युत,! हे आनन्द स्वरूप! हे गोविन्द! इत्यादि श्रीभगवन्नामोच्चारण से डरे हुए सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। (२४) लघुभागवत में कहा है कि हे तात,! हे वत्स,! ४ वेद, १८ पुराण और ६ शास्त्र तथा अनेक तीर्थों से ही क्या प्रयोजन है यदि तुम अपनी मुक्ति के उपाय जानने की इच्छा करते हो तो स्पष्ट रीति से मुक्तिका उपाय गोविन्द, गोविन्द ऐसा नाम रटिये। (२५) कलियुगमें एकवार श्रीगोविन्द, श्रीमाधव, इस प्रकार कीर्त्तन से जैसी देह की शुद्धि होती है तैसी देह की शुद्धि १२ दिन का पराक व्रत ३० दिन का चान्द्रायण व्रत और १२ दिन का तप्त कृछ्र व्रत से नहीं होती है। (२६) श्रीहरिभक्ति सुधोदय में कहा है कि दिन रात विष्णु के नाम लेने वाली, जिह्वा केवल विष्णु के नाम कहने वाले की ही रक्षा अर्थात् पवित्र करती है यह बात नहीं है, किन्तु श्रीभगवन्नाम की कीर्ति को सुनाकर सम्पूर्ण जगत् को पवित्र कर देती है (२७) श्रीभगवन्नाम सम्पूर्ण अपराधों का नाशक है यह बात विष्णुयामल में श्रीभगवान् की उक्ति में प्रकाशित है जो पुरुष इस संसार में श्रद्धासे मेरे सब नामों का कीर्त्तन करता है। तो हम

उसके करोड़ों अपराधों को क्षमा कर देते हैं इसमें सन्देह नहीं है। (२८) श्रीभगवन्नाम सब तीर्थों की अपेक्षा श्रेष्ठ साधन है। यह वृत्तान्त स्कन्द पुराण में लिखा है कि जिस पुरुष की जिह्वा के अग्र भाग में (हरि) यह दो अक्षरवाले नाम विराजमान हैं तो उस पुरुष को (कुरु क्षेत्र) (काशी) तथा (पुष्कर क्षेत्र) से क्या प्रयोजन है। (२९) श्रीभगवन्नाम सब काल और सब स्थानों में लेना चाहिये, यह बात विष्णु धर्म में क्षत्रबन्धु के इतिहास में वर्णित है कि हे लुब्धक! श्रीहरिभगवान् के नाम लेने में जैसे किसी देश विशेष का 'नियम नहीं है वैसेही विशेष कालका भी नियम नहीं है इसी तरह जूठे मुख और बासी मुख भी श्रीभगवन्नाम लेने की मनाई नहीं है।। (३०) स्कन्दपुराण और पद्मपुराण के वैशाख माहात्म्य और विष्णु धर्मोत्तर में कहा है कि श्रीसुदर्शनचक्र के धारण करने वाले श्रीभगवान् के नामों के कीर्त्तन में सब काल और सब स्थान लिये गये हैं। कोई अशुद्धि की शङ्का न करनी चाहिये क्योंकि श्रीसुदर्शनचक्रधारी भगवान् सब के पवित्र करने वाले हैं (३१) वैष्वानरसंहिता में लिखा है कि, जिस पुरुष करिके केवल संकीर्त्तन मात्र से राम राम यह नाम कहा जायतो उस पुरुष के लिये देश, काल, शुद्धि और अशुद्धि का कोई नियम नहीं है। (३२) वैष्णवचिन्तामणि में श्रीयुधिष्ठिर महाराज के प्रति श्रीनारदजी के उपदेश से प्रकाशित है कि हे राजन्! श्रीविष्णु-नाम के संकीर्त्तन करने में कोई विशेष देश तथा विशेष कालका निःसन्देह कोई नियम विद्यमान नहीं है (३३) इस पृथ्वी में दान, यज्ञ, स्नान और सन्मन्त्र के जप में तो विशेष कालका नियम है लेकिन श्रीविष्णु के कीर्त्तन में कालका नियम नहीं है। (३४) इसके पीछे श्रीभगवान् के नाम में अर्थवाद (स्तुति मात्र) की कल्पना करना दोष है इस बातके जनाने वाले औरभी श्लोकों को लिखते हैं ब्रह्मसंहिता में बौधायन ऋषिके प्रति श्रीभगवान् का वचन है कि जो पुरुष अनेक तरह हमारे नाम कीर्त्तन के फल को सुन कर भी नाम लेने में श्रद्धा नहीं करता है प्रत्युत (उलटा) श्रीभगवन्नाम में अर्थवाद (प्रशंसामात्र) मानता है तो हम संसार को भयंकर अनेक तरह की व्याधियों से अत्यन्त दुःखी

अङ्गवाले उस पुरुष को दुःखों के समूह में गिरादेते हैं। (३५) जो पुरुष श्रुति और स्मृतियों के द्वारा निश्चित ऐसे श्रीभगवन्नाम के माहात्म्यमें अर्थवादकी कल्पना करतेहैं वे अवश्य ही भयंकरदुःखों को भोगतेहैं (३६) श्रीमहाभारतके उद्योग पर्वमें श्रीकृष्णचन्द्र संजय से बोले कि हे सञ्जय, धृतराष्ट्र और दुर्योधन से यह कह देना कि द्रौपदी के नग्न करने का विचार जब दुःशासन ने किया और वस्त्र खेंचने लगा तब रोती हुई द्रौपदी ने द्वारकावासी अर्थात् द्वारकावासी हमारे को हे गोविन्द कह कर जो पुकारा उसी क्षण द्रौपदीजी की लज्जा राखते हुए हमको उसी समय सम्पूर्ण कुरुवंश का नाश करना उचित था लेकिन आपलोगों को भी सम्बन्धी समझ कर छोड़ दिया इससे वह ऋण दिन पर दिन बढ़ते बढ़ते बहुत ही बढ़ गया है कहां तक कहें हमारे हृदय से हटाने परभी नहीं हटता है। (३७) अब यहाँ पर प्रसङ्ग वश द्रौपदी की लावनी भी लिखते हैं।

बिन काज आज महाराज लाज गई मेरी।
दुख हरो द्वारिका नाथ शरण मैं तेरी ॥
दुश्शासन बंश कुठार महा दुख दाई।
कर पकरत मेरो चीर लाज नहिं आई ॥
जब भयो धर्म का नाश पाप रहो छाई।
लखि अधम सभा की ओर नारि बिल खाई ॥
शकुनी दुर्योधन करण खड़े खल घेरी।
दुख हरो द्वारिका नाथ शरण मैं तेरी ॥ १ ॥

तुम दीनन की सुधि लेत देवकी नन्दन।
महिमा अनन्त अगवन्त भक्त दुख भञ्जन ॥
तुम किया सिया दुख दूर शम्भु धनु खण्डन।
अति आरति हरण गोपाल मुनिन मन रञ्जन ॥
करुणा निधान भगवान् करी कहां देरी।
दुख हरो द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी ॥ २ ॥

तुम सुनि गयन्द की टेर विश्व अघनाशी।
महमारि छुड़ाई बन्दि काट पग फाँसी॥
मैं धरों तिहारो ध्यान द्वारिका वासी।
अब कृपा करो यदुनाथ जानि चित चेरी।
दुख हरो द्वारिका नाथ शरण मैं तेरी ॥ ३॥

तुम पति राखी प्रहलाद दीन दुख टारयो।
भये खम्भफारि नरसिंह असुर संहारयो॥
ब्रज खेलत केशी आदि बकासुर फारयो।
मथुरा में मुष्टिक चाणूर कंस को मारयो॥
तुम पिता मातु को जाय कटाई बेरी।
दुख हरो द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी ॥ ४॥

भक्तन हित लै अवतार कन्हाई तुमने।
नल कूबर की जड़ योनि छुड़ाई तुमने।
जल वर्षत प्रभुता अगम दिखाई तुमने॥
नख पर गिरिधरि ब्रज लियो बचाई तुमने।
प्रभु अब विलम्ब कों करी हमारी बेरी।
दुख हरो द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी ॥ ५॥

बैठे सब राज समाज नीति जिन खोई।
नहिं कहत धर्म की बात सभा में कोई।
पाँचो पति बैठे मौन कौन गति होई।
लै नन्द नंदन को नाम द्रौपदी रोई॥
करि करि विलाप सन्ताप सभा में टेरी।
दुख हरो द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी ॥ ६॥

सुन दीन बन्धु भगवान् भक्त हितकारी।
हरि भये चीर में आप हरयो दुख भारी॥
खेंचत हारयो मति मन्द वीर बलकारी।
रख लई दीनन की लाज आप बनवारी॥
हरषत सब सुरन समाज बजावत भेरी।
दुख हरो द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी ॥ ७॥

क्या करी द्वारिकानाथ मनोहर माया।
अम्बर का लगा पहाड़ अन्त नहिं पाया॥

तिहुं लोक चतुर्दश भुवन चीर दरशाया।
बन्दी गणेश परसाद कृष्ण गुण गाया॥
दीनन की दीनानाथ विपति निरबेरी।
दुख हरो द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी ॥८॥

सवैया।

द्रुपदी चहुंओर चितै जो रही चित जाय रह्यौ यदुनाथ जहां है।
भीषम द्रोण रहे गहि मौन दुशासन अम्बर लेन चहा है॥
पाँचों पती तन हेर रही यदुनाथ उबारहु देर कहा है।
मध्य सभा मोहि करत उघारि सो चारि भुजा के मुरारि कहां हैं १
कञ्चन रूपी अटारी तजी हम और तजी कुबिजासी दासी।
भोरहि भानु उदय जो भयो सतभामा तजी अरधङ्ग रमासी॥
बंशी तजी और ग्वाल तजे हम धेनु तजीं वनमाँझ पियासी।
बादिन दौरि थक्यों द्रुपदी जब तूने कही चलु द्वारिका वासी २

पद्यावल्याम्—अथ प्रेम्णः सौभाग्यम् ॥ श्रीरामानन्दराजस्य नानोपचारकृतपूजनमार्त्तबन्धोः प्रेम्णैव भक्तहृदयं सुखविद्रुतं स्यात्। यावत् क्षुदस्ति जठरे जरठा पिपासा तावत्सुखाय भवतोनतु भक्ष्यपेये ३८॥ कस्य चित्। कृष्णभक्तिरसभाविता मतिः क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते, तत्र मौल्यमपि लौल्यमेकलं जन्म कोटिसुकृतैर्न लभ्यते ॥ ३९ ॥ श्रीधरस्वामिनाम् ॥ ज्ञानमस्ति तुलितं च तुलायां प्रेम नैव तुलितं च तुलायाम्। सिद्धिरेव तुलिताऽत्र तुलायां कृष्णनाम तुलितं न तुलायाम् ॥ ४० ॥ श्रीलक्ष्मीधराणाम्। अंहः

संहरदखिलं सकृदुदयादेव सकललोकस्य। तरणि-रिव तिमिरजलधिं जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम ॥४१॥ कस्यचित्– कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रोच्य-मानम्। विश्रामस्थानमेकं कविवर वचसां जीवनं सज्जनानां बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये कृष्णनाम ॥ ४२ ॥ भगवतः श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभोः चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं श्रेयःकैरव चन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्। आनन्दाम्बुधि-वर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतस्वादनं सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्त्तनम् ॥ ४३ ॥ केषांचित्-ब्रह्माण्डानां कोटिसंख्याधिकानामैश्वर्यं यच्चेतना वा यदंशः। आविर्भूतं तन्महः कृष्णनाम तन्मे साध्यं साधनं जीवनं च ॥ ४४ ॥ श्रीधरस्वामिपादानाम् ॥ सदा सर्वत्राऽऽस्ते ननु विमलमाद्यं तव पदं तथा-ऽप्येकं स्तोकं नहि भवतरोः पत्रमभिनत्। क्षणं जिह्वाग्रस्थं तव तु भगवन्नाम निखिलं समूलं संसारं कपति कतरत्सेव्यमनयोः ॥ ४५ ॥

अब पद्यावली के वचनोंको दिखाते हैं। पहिले पहिल सौभाग्य का वर्णन करते हैं। श्रीरामानन्दराज के वचन से प्रकाशित है कि

जैसे पुरुष के पेटमें जब तक भूख और प्यास अत्यन्त बढ़ी हुई होती है तबहीं तक पुरुष को भोजन और जल सुख के देने वाले होते हैं। तैसे ही दीनबन्धु भगवान् का अनेक प्रकारकी सामिग्रियों से किया हुआ पूजन तबहीं तक सुखद होता है कि जबतक दीन-बन्धु भगवान् के प्रेम से ही भक्तका हृदय सुख पूर्वक पिघल न जाय ॥ ३८ ॥ किसी महानुभाव पुरुष का वचन है कि जो कृष्णकी भक्ति रूपी रससे रसीली बुद्धि कहीं से भी आपको मिल जायतो खरीद लाइये, लेकिन करोड़ों जन्मों के पुण्यों से भी दुर्लभ श्रीभगवान् में केवल एक मनकी उत्कण्ठा (लगन) ही उस बुद्धि का मूल्य है ॥ ३९ ॥ श्रीधरस्वामिपाद कहते हैं कि हे प्रेमी जनो! एक बड़े ही आश्चर्य की बात है कि तराजू में ज्ञान तो तौलने में आगया लेकिन श्रीकृष्ण में भक्तजनों का प्रेम तौलने में नहीं आया, ऐसे ही तराजू में सिद्धि ही तौलने में आई, परन्तु श्रीकृष्ण नाम तौलने में नहीं आये ॥ ४० ॥ श्रीलक्ष्मीधरजी का वचन है कि जैसे सूर्यनारायण अन्धकार रूपी समुद्र का संहार करते हुए ही श्रेष्ठ कहे जाते हैं तैसे ही भक्तों के हृदय कमल में एकवार उदय को प्राप्त होते हुए ही सम्पूर्ण लोकों के सब पापों का संहार करते हुए जगत् के मङ्गल करन वारे श्रीहरिके नाम श्रेष्ठ हैं ॥ ४१ ॥ किसी एक महानुभाव सज्जन का कथन है कि कल्याणों का खजाना कलियुग के मलों का नाशक, पवित्र करने वालों के भी पवित्र करने वाले, एवं मुमुक्षु पुरुष को जल्दी वैकुण्ठादि लोकों की प्राप्ति के लिये मार्गमें हितकारी भोजन से भी अधिक श्रेष्ठ उत्तम कवीश्वरों की वाणियों के ठहरने का एक प्रधान स्थान सज्जनों का जीवन तैसे ही धर्मरूपी वृक्षका बीज, भक्त जनों द्वारा लिये गये श्रीकृष्णनाम आप लोगों के ऐश्वर्य के लिये होंवें ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु का वचन है कि, चित्तरूपी दर्पण की शुद्धि करनवारे संसार रूपी बड़ी भारी वनकी अग्नि को बुझानेवाले कल्याण रूपी कुमोदनी के खिलाने के लिये चाँदनी के देनवारे विद्यारूपी वधू (स्त्री) के जीवन आनन्द के समुद्र के बढ़ानेवाले पद पद के उच्चारण में पूर्ण अमृत से भी अधिक स्वादिष्ट एवं सब जीवों के अन्तः करणके शुद्ध करने वारे, सबसे श्रेष्ठ श्रीकृष्णके

संकीर्त्तन विजय को प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥ किसी महानुभाव पुरुष का वाक्य है कि, जो तेज अनन्त ब्रह्माण्डों के बीच में ऐश्वर्यरूप से विद्यमान है, और जिस तेज के अंश अर्थात् अनन्त शक्तियां सब जीवमात्र कहे जाते हैं वही सबसे विलक्षण तेज लोक में श्रीकृष्णनाम से प्रगट है। अब यहाँ पर नाम और नामी के अभेद करिकें कहते हैं कि वेही श्रीकृष्णनाम हमको साध्य, साधन और जीवनमूर हैं ॥ ४४ ॥ श्रीधरस्वामिपाद तर्क करते हुए कहते हैं कि, यद्यपि जगत् का कारण, निर्मल, आपका श्रीचरणारविन्द सब काल और सब जगह में विराजमान हैं तो भी संसार रूपी वृक्ष के एक छोटे से छोटे पत्र का भी भेदन नहीं किया और हे भगवन्! क्षणभर भी किसी पुरुष की जिह्वा के अग्रभाग में स्थित आपके नाम तो जड़ सहित सम्पूर्ण संसार रूपी वृक्षको नष्टकर देते हैं तो दोनों के बीचमें कौन सेवन करने योग्य है अर्थात् आपके नामही सेवनीय हैं ॥ ४५ ॥

नारसिंहे श्रीभगवदुक्तौ-कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति योमां स्मरति नित्यशः। जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ॥ ४६ ॥ कस्यचित्। विचेयानि विचार्याणि विचिन्त्यानि पुनः पुनः। कृपणस्य धनानीव त्वन्नामानि भवन्तु नः ॥ ४७ ॥ भगवतः श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभोः। नाम्नामकारि बहुता निजसर्वशक्तिस्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः। एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥ ४८ ॥ आदिपुराणे श्रीकृष्णार्जुन संवादे। श्रद्धया हेलया नाम रटन्ति मम जन्तवः। तेषां नाम सदा

पार्थ वर्त्तते हृदये मम ॥ ४९ ॥ न नामसदृशं ज्ञानं न नाम सदृशं व्रतम् । न नामसदृशं ध्यानं न नाम-सदृशं फलम् ॥ ५० ॥ न नामसदृशस्त्यागो न नाम सदृशः शमः । न नामसदृशं पुण्यं न नामसदृशी गतिः ॥ ५१ ॥ किञ्च नामैव परमा मुक्तिर्नामैव परमा गतिः । नामैव परमाशान्तिर्नामैव परमा स्थितिः ।५२। नामैव परमा भक्तिर्नामैव परमा मतिः । नामैव परमा प्रीतिर्नामैव परमा स्मृतिः ॥ ५३ ॥ नामैव कारणं जन्तोर्नामैव प्रभुरेव च । नामैव परमाराध्यो नामैव परमोगुरुः ॥ ५४ ॥ किञ्च नामयुक्तान् नरान् दृष्ट्वा स्निग्धोभवति योनरः । सयाति परमं स्थानं विष्णुना सह मोदते ॥ ५५ ॥ तस्मान्नामानि कौन्तेय भजस्व दृढमानसः । नामयुक्तः प्रियोऽस्माकं नामयुक्तो भवार्ज्जुन ॥ ५६ ॥ त्वामेव याचे मम देहि जिह्वे समागते दण्डधरे कृतान्ते । आवर्त्तयेथा मधुराक्षराणि गोविन्द,दामोदर,माधवेति ॥ ५७ ॥ श्रीभारतविभागे। कृष्णः कृष्णः कृष्ण इत्यन्तकाले जल्पन् जन्तुर्जीवितं योजहाति । आद्यः शब्दः कल्पते तस्य मुक्त्यै व्रीडा-नम्रौ तिष्ठतोऽन्यावृणस्थौ ॥ ५८ ॥ अथ नामसंकी-र्त्तनम् । भगवतः श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभोः । तृणादपि

सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना । अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः ॥ ५६ ॥

नरसिंहपुराण में श्रीनृसिंहभगवान् प्रह्लादजी से बोले कि हे प्रह्लाद ! जो पुरुष नित्य हमारा कृष्ण,कृष्ण,कृष्ण इस प्रकार स्मरण करता है तो उस पुरुष का जैसे कमल जलका भेदन कर अपने आप जलके ऊपर आजाता है, तैसेही नरक से उद्धार कर हम उस पुरुष को अपने पास बुलालेते हैं ॥ ४६ ॥ किसी महानुभाव पुरुष का वचन है कि जैसे कृपण पुरुष को धन मिलने पर वे धन, ही हर घड़ी, बटोरने, विचारने और चिन्तवन के योग्य होते हैं, तैसे ही हम लोगों को आपके नाम हो जाँय ॥ ४७ ॥ गौराङ्ग— महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य ने अपने शिक्षाष्टक में कहा है कि,हे भगवन् ! सकल साधारण जीवों के उद्धार के लिये, आपने अपने संसार में अनेक नामों को प्रगट किया। और अपने उन सब नामों में अपनी शक्तिका अर्पण किया। उन नामों के उच्चारण अथवा स्मरण करने का कोई प्रातःकालादि कालका भी नियम नहीं किया चाहे जबही ले ऐसी तो आपकी निःसीम कृपा और अपने दुष्ट भाग्य की महिमा क्या वर्णन करें। जोकि आपके नाममें अनुराग भी नहीं हुआ। ॥ ४८ ॥ आदि पुराण में श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवाद में कहा है कि, हे अर्जुन ! जो जो पुरुष मेरे नामको श्रद्धासे अथवा अनादर से रटते हैं उन उन पुरुषों के नाम मेरे हृदय में सदाँही वर्त्तमान रहते हैं। ४९ ॥ श्रीभगवन्नाम के तुल्य, ज्ञान, ध्यान, फल, दान, शम, पुण्य और गति इन्हों में से कोई नहीं है ॥ ५० । ५१ ॥ और भी सुनिये, नाम ही सबसे बढ़कर उत्तम मुक्ति, गति, स्थिति, भक्ति, मति, प्रीति और स्मृति है ॥ ५२ । ५३ ॥ श्रीभगवन्नाम ही जीवमात्र का कारण एवं प्रभु है, श्रीभगवन्नाम ही सबसे उत्तम आराधन करने योग्य है और भगवन्नाम ही परम गुरु हैं ॥ ५४ ॥ जो पुरुष श्रीभगवन्नामोच्चारण करते हुए पुरुषों को देख कर स्नेह करता है तो वह पुरुष श्रीवैकुण्ठादि लोकों में जाकर श्रीविष्णु के साथ परमानन्द को भोगता है ॥ ५५ ॥ तिससे हे अर्जुन ! अपने

मनमें दृढ़ता रखते हुए श्रीभगवन्नाम लीजिये। क्योंकि श्रीभगवन्नाम लेने वाला ही पुरुष हमारा प्यारा है इससे तुमभी श्रीभगवन्नाम लेनेमें कटिबद्ध हो जाओ ॥ ५६ ॥ किसी महानुभाव पुरुष का वचन है कि, हे जिह्वे ! (जीभ) कभी दण्डधारी, यमराज आवें तो तुमही हमारी ओर से मधुर अक्षरवाले गोविन्द, दामोदर और माधव, इन श्रीभगवन्नामों का उच्चारण करते रहना, बस यही हम तुमसे माँगते हैं सो दीजिये ॥ ५७ ॥ जो पुरुष मरने के समय कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण इस प्रकार श्रीभगवन्नाम उच्चारण करता हुआ अपने प्राणों को छोड़ताहै तो उस पुरुषकी मुक्तिके लिये पहिलाही श्रीकृष्ण शब्द समर्थ है अर्थात् एकही कृष्णशब्दके उच्चारणसे मुक्ति होजातीहै और लियेहुए अन्यदो श्रीकृष्णशब्द तो उसपुरुषकेआगे लज्जासे शिर झुकाये हुए ऋणी पुरुषकी तरह खड़े रहते हैं ॥५८॥ श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुजी कहते हैं कि सब कालमें अथवा श्रीभगवन्नामोच्चारणके समयमें सब मनुष्यों को इस प्रकार बर्त्ताव करना चाहिये कि अपने को तृणसे भी अत्यन्त नीच समझना और जैसे वृक्ष काटने वालों के प्रहारादि दोषों की गणना न करता हुआ पत्र, पुष्प और फलादिकों को देता ही है इसी तरह भक्त को भी अपने आपही वृक्षसे भी अधिक सहन शील होना चाहिये ॥ और अपने मानकी इच्छा न करै। और दूसरे पुरुषों को मानदेवे ॥ ५९ ॥

श्रीभगवन्नाम के विषय में सबको सार एक महात्माने भाषा पद्य से कहा है कि,—

पुराण को पार नहिं वेदन को अन्त नहिं,
बाणी तो अपार कहाँ कहाँ चित्त दीजिये।
लाखन की एक कहूं कहूं एक कोरन की,
सब ही को सार एक कृष्णनाम लीजिये ॥

पाद्मोक्तादशाप्यपराधाः परित्याज्याः । तथैव सनत्कुमारवचनम् । "सर्वापराधकृदपि मुच्यते हरिसंश्रयात् । हरेरप्यपराधान् यः कुर्य्यादद्विपदपांसनः ।

नामाश्रयः कदाचित्स्यात् तरत्येव स नामतः। नाम्नोऽपि सर्वसुहृदोह्यपराधात् पतत्यधः" इति ॥ अपराधाश्चैते "सतां निन्दा नाम्नः परममपराधं वितनुते यतः ख्यातिं यातं कथमुसहते तद्विगर्हाम्। (१) शिवस्य श्रीविष्णोर्यइह गुणनामादिकमलं धिया भिन्नं पश्येत् सखलु हरिनामाहितकरः (२) गुरोरवज्ञा(३) श्रुतिशास्त्रनिन्दनं (४) तथार्थवादो हरिनाम्नि (५) कल्पनम् (६) नाम्नोबलाद्यस्यहि पापबुद्धिर्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः। (७) धर्मव्रतत्यागहुतादिसर्वशुभक्रियासाम्यमपि प्रमादः। (८) अश्रद्दधाने विमुखेऽप्यशृण्वति यश्चोपदेशः शिवनामापराधः (९) श्रुत्वाऽपि नाममाहात्म्यं यः प्रीतिरहितोऽधमः। अहंममादिपरमो नाम्नि सोऽप्यपराधकृदिति" (१०) अत्र सर्वापराधकृदपीत्यादौ श्रीविष्णुयामलवाक्यमप्यनुसन्धेयम ॥ "मम नामानि लोकेऽस्मिन् श्रद्धया यस्तु-कीर्त्तयेत्। तस्यापराधकोटीस्तु क्षमाम्येव न संशयः" इति सतां निन्देत्यनेन हिंसादीनां वचनागोचरत्वं दर्शितम। निन्दादयस्तु यथा स्कान्दे श्रीमार्कण्डेय-भगीरथसम्वादे "निन्दां कुर्वन्ति येमूढा वैष्णवानां महात्मनाम् । पतन्ति पितृभिस्सार्द्धं महारौरवसंज्ञिते ॥

हन्ति निन्दति वै द्वेष्टि वैष्णवान्नाभिनन्दति । क्रुध्यते याति नो हर्षं दर्शने पतनानि षट्" इति तन्निन्दा-श्रवणेऽपि दोषउक्तः ॥ "निन्दां भगवतः शृण्वन् तत्परस्य जनस्य वा ॥ ततोनापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः" इति ततोऽपगमश्चासमर्थस्यैव समर्थेन तु निन्दकजिह्वा छेत्तव्या ॥ तत्राप्यसमर्थेन स्वप्राण-त्यागोऽपि कर्त्तव्यः । यथोक्तं देव्या भा० चतुर्थस्कन्धे ४ अ. श्लो. १७ "कर्णौ पिधाय निरियाद्यदकल्पईशे धर्मावितर्य्यसृणिभिर्न्नृभिरस्यमाने । जिह्वां प्रसह्य रुषतीमसतीं प्रभुश्चेच्छिन्द्यादसूनपि ततोविसृजेत्सधर्मः" इति ।

साधकों को पद्मपुराण में कहे हुए १० दश नामापराध भी अवश्य छोड़ने योग्य हैं तैसेही श्रीसनत्कुमारजी का वचन दिखाते हैं वह इस प्रकार है कि, अन्य और सब अपराधों का करने वालाभी, श्रीभगवान् के शरण में प्राप्त होने से, सब अपराधों से छूट जाता है। और मनुष्यों में श्रीहरिके अपराधों को करनेवाला भी कोई नीच पुरुष कदाचित् नामकी शरण हो जाय तो वह श्रीहरिनामके प्रभाव से संसाररूपी समुद्र से पार हो ही जाता है लेकिन जीवमात्र का कल्याण करनेवाला श्रीहरिनाम के अपराध करने से तो अवश्य ही नरक में पड़ता है । अब दशनामापराधों को दिखाते हैं जब सत्पुरुषों की निन्दा की नामापराध में गणना है तो उनको दुर्वाक्य कहना और उनको ताड़न करना अवश्यही विशेष नामापराध में गणना होगी, यदि कहिये कि महात्माओं की निन्दादि से कैसे नामापराध होगा, उस पर श्रीभगवन्नाम विचार करते हैं कि जिन महात्माओं के द्वारा हमारे महत्त्व की प्रसिद्धि

हुई उन महात्माओं की निन्दा हम कैसे सह सकते हैं, इस कारण से महात्माओं की निन्दा को श्रीभगवन्नाम अपनाही अपराध समझ लेते हैं। १ महात्माओं की निन्दा करना दोष है, यह बात स्कन्द पुराण में श्रीमार्कण्डेय और भगीरथजी के सम्वाद में कही है कि जो मूढ़जन महात्मा वैष्णवों की निन्दा करते हैं वे मूढ़जन अवश्य ही अपने बाप दादाओं के साथ महारौरव नामवाले नरक में पड़ते हैं। जो पुरुष वैष्णवों को मारता है और निन्दा करता हुआ वैष्णवों के साथ द्वेष अर्थात् वैर रखता है और जो पुरुष वैष्णवों को आते हुए देख, हम बड़ भागी हैं ऐसे अपने भाग्य की सराहना करता हुआ, भले आए आइये आइये विराजिये, इस प्रकार वैष्णवों का अभिनन्दन अर्थात् प्रशंसा नहीं करता है और वैष्णवमात्र को देखते ही टेढ़ी भौं चढ़ाकर क्रोध करता है कि राम राम यह आपत्ति बलाय कहां से आगई इस प्रकार दुःख ही मानता है आनन्द को कभी प्राप्त नहीं होता है बस कहां तक कहें मानों उस पुरुष ने नरक जाने के लिये ६ छः प्रकार की सम्पत्तिओं को इकट्ठा कर लिया है इससे वह अवश्य ही नरक जायगा। शास्त्रकारों ने महात्माओं की निन्दा सुनने में भी दोष कहा है अपनी सामर्थ्य से हीन जो पुरुष वह किसी स्थान में भी श्रीभगवान् और भगवान् के भक्तजनों की निन्दा को सुनता हुआ भी उस स्थान से दूसरी जगह नहीं जाय तो अपने किये हुए पुण्य से हाथ धोकर नरक में पड़ता है यदि समर्थ पुरुष भगवान् और भगवान् के भक्तजनों की निन्दा को सुने तो उसी समय निन्दा करनेवाले पुरुष की जिह्वा (जीभ) को काट ले, और जो निन्दा करनेवाले पुरुष की जिह्वा काटने की सामर्थ्य न होय तो वह पुरुष अपने प्राणों को छोड़दे यही उसका धर्म है। यहीबात श्रीमद्भागवत ४ स्कं० ४ अ० १७ सत्तरहवें श्लोक में सतीजी ने अपने पिता दक्ष प्रजापति के यज्ञमें देह छोड़ने की इच्छा करते समय अपने मुखारविन्द से धर्म के तत्त्व निरूपण द्वारा कही है कि, धर्मकी रक्षा करनेवाले महात्मा और ईश्वर इन दोनों की निरङ्कुश अर्थात् उच्छृङ्खल पुरुषों से निन्दा को सुनता हुआ जो पुरुष वह अपने प्राणों को छोड़ने में एवं श्रीभगवान् की निन्दा करनेवाले को

मारने में समर्थ नहीं है तो कानों को मूंद कर दूसरी जगह चला जाय, समर्थ पुरुष, निन्दा करनेवाले पुरुष की महात्माओं की निन्दा करती हुई जीभ को जबरदस्ती काट दे, और जीभ काटने में सामर्थ्य न होय तो अपने प्राणों को छोड़दे यही उसका धर्म है। प्रथम नामापराध समाप्त हुआ, ।

शिवस्य श्रीविष्णोरित्यत्रैवमनुसन्धेयम् । श्रूयते ऽपि "यद्यद् विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्त-देवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसम्भवम्" इति । ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कला कलायाः "इति यत्पादनिः सृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत्" इति "सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः ॥ विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक्,, तथा माध्वभाष्यर्शितानि वचनानि । ब्रह्माण्डे ॥ "रुजं द्रावयते यस्माद् रुद्रस्तस्माज्जनार्दनः । ईशना-देव चेशानो महादेवोमहत्त्वतः ॥ पिवन्ति ये नरा नाकं मुक्ताः संसारसागरात् । तदाधारो यतोविष्णुः पिनाकीति ततः स्मृतः ॥ शिवः सुखात्मकत्वेन सर्व-संरोधनाद्धरः । कृत्यात्मकमिदं देहं यतोवस्ते प्रवर्त्त-यन् ॥ कृत्तिवासास्ततोदेवोविरिञ्चिश्च विरेचनात् । बृंहणाद् ब्रह्मनामासौ ऐश्वर्य्यादिन्द्रउच्यते ॥ एवं नाना-विधैश्शब्दैरेकएव त्रिविक्रमः । वेदेपुच पुराणेषु गीयेते पुरुषोत्तमः,, इति । वामने "नतु नारायणादीनां

नाम्नामन्यत्र सम्भवः । अन्यनाम्नां गतिर्विष्णुरेक एव प्रकीर्त्तितः,, इति ॥ स्कान्दे "ऋते नारायणादीनि नामानि पुरुषोत्तमः । अदादन्यत्र भगवान् राजेवर्त्ते स्वकं पुरम ॥,, ब्राह्मे "चतुर्मुखः शतानन्दोब्रह्मणः पद्मभूरिति । उग्रोभस्मधरोनग्नः कपाली ति शिवस्य विशेषनामानि ददौ स्वकीयान्यपि केशवः,, इति तदेवं श्रीविष्णोस्सर्वात्मकत्वेन प्रसिद्धत्वात् तस्मात्सकाशात् शिवस्य गुणनामादिकं भिन्नं शक्त्यन्तरसिद्धमिति योधियाऽपि पश्येदित्यर्थः ॥ द्वयोरभेदतात्पर्य्येण षष्ठ्यन्तत्वे सति श्रीविष्णोश्चेत्यपेक्ष्य चशब्दः क्रियेत । तत्प्राधान्यविवक्षयैव श्रीशब्दश्च तत्रैव दत्तः ॥ अतएव शिवनामापराधइत्यत्र शिवशब्देन मुख्यतया श्रीविष्णुरेव प्रतिपादितइत्याभिप्रेतम् । सहस्रनामादौच स्थाणुशिवादिशब्दास्तथैव ॥ अथ गुरोरवज्ञा अनादरः ।

जो पुरुष इस संसार में रह कर अपनी बुद्धि से सम्पूर्ण शक्तिवाले जो विष्णु उनकी शक्तिरूप शिवजी के गुण और नामादिकों को और सम्पूर्ण शक्तिवाले श्रीविष्णु के गुण और नामादिकों को विशेष करिके भिन्न भिन्न देखता है । वह पुरुष निश्चय करिके श्रीहरिनाम का अपराधी है। यहां पर यह जानना चाहिये कि श्रीगीताजी के १० दशवें अध्याय के विभूति वर्णन में यह कहा है कि, हे अर्जुन ! जो जो पदार्थ विभूतिवाले,

श्रीवाले और बढ़े हुए देखने में आते हैं इन सब पदार्थों को हमारे तेज के अंशमात्र से उत्पन्न हुए जानो। और श्रीमद्भागवत, द्. स्कं. उ. अ. ६८ श्लोक ३७ से श्रीबलदेवजी कहते हैं कि, ब्रह्मा,महादेवजी, लक्ष्मीजी और हम भी जिन श्रीकृष्णचन्द्रजी के अंश के अंश हैं। श्रीमद्भागवत, ३ स्कं. अ. २८ श्लोक २२ में भी श्रीभगवान् का महत्त्व वर्णन किया है कि जिन श्रीभगवान् के चरणारविन्द से निकली हुई श्रेष्ठ श्रीगङ्गाजी के पवित्र जल को मस्तक पर धारण करनेही से शिवजी संसार मात्र के कल्याण करनेवाले हो गये। श्रीमद्भागवत-२स्कं० अ ६ श्लोक ३२ में श्रीब्रह्माजी, श्रीनारदजी से कहते हैं कि हे नारद! हम श्रीभगवान् की आज्ञासे संसार को रचते हैं और भगवान् के अधीन श्रीमहादेवजी संसार का प्रलय करते हैं उत्पत्त्यादि तीनों शक्तियों को धारण करते हैं श्रीविष्णु पुरुष रूप से विश्व की रक्षा करते हैं। तैसेही पहिले अर्थ में ब्रह्मसूत्र के श्रीमध्वाचार्य रचित माधवभाष्य में दिखाये हुए वचन भी प्रमाण हैं। ब्रह्माण्ड पुराण में कहा है कि जनार्दन भगवान् रोग को दूर करदेते हैं इससे भगवान् का रुद्रनाम है और संसार के ऊपर शासन करने से भगवान् का ईशान नाम है सबसे अधिक बड़प्पन होने से भगवान् का नाम महादेव है। संसार रूपी समुद्र से मुक्त हुए पुरुष वैकुण्ठादिलोकों के परमानन्द सुखका अनुभव करते हुए विराजते हैं। और वैकुण्ठादिलोक, परमानन्द सुख और मुक्तजनों के परमाधार विष्णु हैं इससे श्रीभगवान् का नाम पिनाकी है। सुत्र स्वरूप होने से श्रीभगवान् का नाम शिव है संसार का संहार करते हैं इससे श्रीभगवान् का नाम हर है। जीवमात्र की चर्म की बनी हुई देहों को छोड़े बड़ेसब कामों में प्रवृत्ति कराते हुए अन्तः करण में विराजते हैं इससे श्रीभगवान् का नाम कृत्तिवासा है। ब्रह्माके द्वारा संसार की सृष्टि करते हैं इससे श्रीभगवान् का नाम विरिञ्चि है पालन के द्वारा प्रजाओं की वृद्धि करते हैं इससे श्रीभगवान् का नाम ब्रह्मा है सबसे अधिक ऐश्वर्य होने ही से श्रीभगवान् का नाम इन्द्र है इस तरह वेद और पुराणों में नाना प्रकार के शब्दों द्वारा केवल पुरुषोत्तम भगवान् ही कहे जाते हैं यही बात वामनपुराण में कही है कि नारायणादि नामों का

अन्यदेवताओं के नामों में समभव नहीं हो सकता है क्योंकि अन्य-नामों की गति केवल एक विष्णु ही कहे गये हैं जैसे राजा दान के समय अपने नगर को छोड़ कर ही दूसरे ग्रामों का दान किसी ब्राह्मण को देते हैं तैसे ही श्रीभगवान् पुरुषोत्तम भी अपने खास नारायणादि नामोंको छोड़ कर, अपने अन्यनामोंको, ब्रह्मा एवं शिवादि देवताओं को देते हैं। यही बात ब्रह्मपुराण में भी कही है कि चतुर्मुख, शतानन्द और पद्मभू ए तीन नाम ब्रह्मा हीके हैं उग्र, भस्मधर, नग्न और कपाली ए खास चार नाम शिवजी के हैं और केशव भगवान् ने अपने ही रुद्रादि एवं विरिञ्च्यादि विशेष नामों को क्रम से अर्थात् शिवजी को रुद्रादि और ब्रह्मा को विरिञ्च्यादि नामों का प्रदान किया इस तरह श्रीकृष्ण सबके आत्मा प्रसिद्ध हैं उन श्रीकृष्णचन्द्र से शिवजी के गुण और नामादिकों को भिन्न अर्थात् स्वतन्त्र शिव शक्ति से सिद्ध हैं ऐसा जो पुरुष अपनी बुद्धि से भी देखेगा तो वह पुरुष अवश्य ही श्रीभगवन्नामापराधी होगा। यदि नामापराध के कहनेवाले श्रीवेदव्यासजी का शिव और विष्णु के केवल अभेदही में तात्पर्य होता तो (विष्णोः) इस षष्ठ्यन्त पद के आगें अशब्द कहते सो नहीं कहा इससे प्रतीत होता है कि, शिव और विष्णु के केवल अभेद में तात्पर्य नहीं है और श्रीविष्णु की प्रधानता कहने की इच्छा ही से विष्णु शब्द के पहिले श्रीशब्द का प्रयोग किया है शिव शब्द के पहिले प्रयोग नहीं किया है, इसीसे नामापराधों के अन्त में (शिव नामा पराधः) यहां पर श्री विष्णु को मुख्य होने से शिव शब्द से श्री विष्णु ही लिये गये हैं। विष्णुसहस्रनामादि स्तोत्रों में भी (सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुः) इत्यादि श्लोक में शिव और स्थाणु इत्यादि नाम—स्वतन्त्र श्रीविष्णु ही के नाम हैं इस प्रकार २ दूसरा नामापराध समाप्त हुआ, श्रीगुरुदेवजी का अनादर करना भी नामापराध है क्योंकि, श्रीगुरुदेवजी के द्वारा ही मुमुक्षुजनको श्रीभगवत्तत्त्व और श्रीभगवन्नाम माहात्म्य का ज्ञान होता है तो श्रीभगवन्नाम समझ लेते हैं कि, श्रीगुरुदेवजी का अनादर नहीं किया मानो हमारा ही अनादर किया है इस प्रकार ३ तीसरे नामापराध का विचार पूर्ण हुआ।

वेद् और शास्त्रों की निन्दा करना नामापराध है, जैसे दत्तात्रेय और ऋषभदेव की उपासना करनेवाले पाषण्डी पुरुषों ने पाषण्ड मार्ग का सहारा लेकर वेद् और शास्त्रों की निन्दा की है इस तरह ४ चौथा नामापराध सम्पूर्ण हुआ। श्रीहरिके नाममें अर्थवाद (केवल स्तुति मात्र) है ऐसा मानना भी श्रीभगवन्नामापराध है, इस प्रकार यह पांचवां नामापराध हुआ। और कल्पना अर्थात् श्रीभगवन्नाम माहात्म्य की गौणता करने के लिये दूसरी गतिका चिन्तन करना अर्थात् मनुष्यमात्र श्रीभगवन्नाम लेने को तैयार हो जाँय इस लिये बड़ाई करी है, ऐसा कहना भी नामापराध है। यही बात कूर्मपुराण के श्रीव्यासगीता में कही है कि दैव श्रीभगवान् के साथ वैर करने की अपेक्षा श्रीगुरुदेवजी के साथ वैर करना करोड़ों गुना अधिक है और श्रीगुरुदेवजी के साथ जो द्रोह है उससे भी करोड़गुना वैर वेद् और वेदान्त से उत्पन्न हुए ज्ञान से कुछ नहीं हो सकता है, इस प्रकार नास्तिकपने में समझना चाहिये। वादी सिद्धान्ती से बोले कि जो तुम्हारा कहना बिलकुल सत्य है तो अजामिलने श्रीविष्णुके पार्षदों से श्रीभगवन्नाम के माहात्म्य को सुनकर भी बोले कि मैं अवश्य ही घोर नरक में पड़ूंगा इस तरह क्यों पश्चात्ताप किया। तब सिद्धान्ती उत्तर देते हैं कि अजामिल ने अपने दुष्टपने की ओर ध्यान देकर यह वाक्य कहा है और श्रीभगवन्नाम माहात्म्य की दृष्टि से तो आगे अपने आपही दो श्लोकों में इस प्रकार कहे हैं कि-

अथाऽपि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तमदर्शने ।
भवितव्यं मङ्गलेन येनात्मा मे प्रसीदति ॥ ३२ ॥
अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्वृषलीपतेः ।
वैकुण्ठनामग्रहणं जिह्वा वक्तुमिहार्हति ॥ ३३ ॥

यद्यपि मैं इस जन्ममें भाग्यहीन और महापापी हूं तो भी और जन्म में निश्चय करिके पुण्यात्मा रहा जिससे उत्तमदेवों का दर्शन हुआ और देवताओं के दर्शन ही से हमारा मन प्रसन्न है,

इससे आगे भी मङ्गल ही मङ्गल होंगे और जो मङ्गल होने को नहीं होता तो अपवित्र और व्यभिचारिणी शूद्रा के पति होने परभी मरते मरते हमारी जिह्वा से भी भगवन्नाम नहीं निकलता। इस रीतिसे ६ छटवां नामापराध समाप्त हुआ।

अथ श्रुतिशास्त्रनिन्दनम् ॥ यथा पाषंडमार्गेण दत्तात्रेयर्षभदेवोपासकनां पाषंडिनाम्। तथाऽर्थवादः स्तुतिमात्रामिदमिति मननम्। कल्पनं तन्माहात्म्य-गौणताकरणाय गत्यन्तरचिन्तनम् ॥ यथोक्तं कौर्म्मे व्यासगीतायाम् "देवद्रोहाद्गुरुद्रोहः कोटिकोटिगुणा-धिकः। ज्ञानापवादोनास्तिक्यं तस्मात्कोटिगुणाधिकम्" इति यत्तु श्रीविष्णुपार्षदेभ्यः श्रुतनाममाहात्म्यस्याप्य-जामिलस्य "सोऽहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे,, इत्येतद्वाक्यं तत्खलु स्वदौरात्म्यमात्रदृष्ट्या नाम-माहात्म्यदृष्ट्यात्वग्रे वक्ष्यते "तथाऽपि मे दुर्भगस्य,, त्यादिद्वयम् ॥ "नाम्नोबलादिति,, यद्यपि भवेन्नाम्नो-बलेनापि कृतस्य पापस्य तेन नाम्ना क्षयस्तथापि येन-नाम्नोबलेन परमपुरुषार्थस्वरूपं सच्चिदानन्दसान्द्रं साक्षाच्छ्री भगवच्चरणारविन्दं साधयितुं प्रवृत्तस्तेनैव पर-मघृणास्पदं पापविषयं साधयतीति परमदौरात्म्यम् ततः कदर्थयत्येव तन्नामचेति तत्पापकोटिमहत्तमस्यापराध-स्यापातोवाडमेव। ततोयमैर्बहुभिर्यमनियमादिभिः कृत-प्रायाश्चित्तस्य क्रमेण प्राप्ताधिकारैरनेकैरपि दण्डधरैर्वा

कृतदंडस्य तस्य शुद्ध्यभावोयुक्तएव नामापराधयुक्ताना-मित्यादि वक्ष्यमाणानुसारेण पुनरपिसन्ततनामकीर्त्तन-मात्रस्य तत्र प्रायश्चित्तत्वात् । सर्वापराधकृदपीत्याद्युक्ता-नुसारेण नामापराधयुक्तस्य भगवद्भक्तिमतोऽप्यधः पातलक्षणभोगनियमाच्च ॥ तत इन्द्रस्याश्वमेधाख्यभग-वद्यजनबलेन वृत्रहत्याप्रवृत्तिस्तु लोकोपद्रवशान्ति तदीयासुरभावखंडनं चेच्छुनामृषीणामङ्गीकृतत्वान्नदोष इति मन्तव्यम् ॥ "अथ धर्मव्रतत्यागे,, तिधर्म्मादिभिः साम्यमननमपिप्रमादः । अपराधोभवतीत्यर्थः ॥ अतएव "वेदाक्षराणि यावन्ति पठितानि द्विजातिभिः । तावन्ति हरिनामानि कीर्त्तितानि न संशयः,, इत्यति-देशेनापि नाम्नएव माहात्म्यमायाति । उक्तंहि "मधुर-मधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां सकलनिगमवल्ली सत्फल,, मिति तथा श्रीविष्णुधर्मे "ऋग्वेदोहि यजुर्वेदः सामवेदोऽप्यथर्वणः ॥ अधीतास्तेन येनोक्तं हरिरि-त्यक्षरद्वयम,, स्कान्दे पार्वत्युक्तौ "माऋचोमा यजुस्तात मा साम पठ किञ्चन गोविन्देति हरेर्नाम गेयं गायस्व नित्यशः,, पाद्मे श्रीरामाष्टोत्तरशतनाम-स्तोत्रे ॥,, विष्णोरेकैकनामापि सर्ववेदाधिकम्मत,, मिति ॥

श्रीहरिनाम का सहारा लेकर जिस पुरुष की बुद्धि पाप करने में लग जाती है। उस पुरुष की शुद्धि-श्रीमद्भागवत-११ स्कं० १९ अ० के ३३ तेतीस एवं ३४ चौंतीसवें श्लोक में कहे हुए-किसी जीव की हिंसा न करना १ सत्य बोलना २ किसी वस्तु की चोरी न करना ३ दुष्टजनों का सङ्ग न करना ४ बुरे कामों में लज्जा करना ५ धन का संचय न करना ६ वेद और शास्त्र में कहे हुए अर्थ में श्रद्धा रखना ७ आठ प्रकार के कहे हुए मैथुन का परित्याग करना ८ थोड़ा बोलना ९ स्थिरचित्त रहना १० क्षमाकरना ११ निर्भय रहना १२ इस प्रकार १२ यम बारह से शरीरादि की शुद्धि१ और भीतर से कामादि वासनाओं को त्याग कर अन्तः करण की शुद्धि २ जप ३ तप ४ और होम करना ५ श्रीगुरुदेव और वेदान्त वाक्यों में श्रद्धा करना ६ अतिथियों का सत्कार करना ७ और श्रीहरि का पूजन करना ८ तीर्थों में घूमना ९ दूसरे पुरुषों के लिये शरीरादिकों की चेष्टा रखना १० सन्तोष रखना ११ आचार्य्य की सेवा करना इस प्रकार १२ नियमों से नहीं हो सकती है। यद्यपि श्रीहरिनाम के बल से किये हुये पाप का नाश उसी श्रीहरिनाम के लेने से होता है तौ भी जिस श्रीहरिनाम के बल से परम पुरुषार्थ रूप, सच्चित् आनन्द घन जो साक्षात् श्रीभगवान् का चरणारविन्द उसकी प्राप्ति के लिये प्रवृत्त हुआ कोई पुरुष उन श्रीहरिनाम के बल से अत्यन्त निन्दा योग्य पापमें लग जाता है इससे वह पुरुष श्रीहरिनाम का तिरस्कार करता है जैसे चक्रवर्ती राजा के पास जाकर कोई याचक रत्नादिकों को न मांग कर अत्यन्त तुच्छ पदार्थ भुसी को मांगै। बस यही उस पुरुष का अत्यन्त दुष्टपना है। और इसी कारण से उसी पुरुष को करोड़ों पापों के अपराध का फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा। इससे यम नियमादिकों के द्वारा प्रायश्चित्त करनेपर अथवा, अनेक दण्डाधिकारियों द्वारा दण्ड पाने परभी उसपुरुष की शुद्धि नहीं होती है यह कहना ठीक ही है। नामापराधयुक्तानामित्यादि, आगे कहे हुए श्लोक के अनुसार से फिरभी श्रीभगवन्नाम के बल से पाप करने वाले पुरुष के पापों का निरन्तर श्रीभगवन्नाम का कीर्त्तन करना ही प्रायश्चित्त है। सर्वापराध इत्यादि, पहिले कहे हुए

श्लोक के अनुसार से श्रीभगवान् की भक्ति से युक्त पुरुष है लेकिन साथ ही साथ श्रीभगवन्नामापराध से युक्त भी है तो उस पुरुष का पापों से छुटकारा नरकों के दुःखों के भोगे बिना नहीं हो सकता है ऐसा नियम है वादी सिद्धान्ती से बोले कि आपके मतमें सब तरह श्रीभगवन्नाम के बल से पाप करना श्रीभगवन्नामापराध है तो हम आपसे पूछते हैं कि ऋषियों के कहने पर इन्द्र ने अश्वमेध नामवाले श्रीभगवान् के पूजन के बल से वृत्रासुरकी हत्या क्यों करी, तब सिद्धान्ती उत्तर देते हैं कि लोकों के उपद्रवों की शान्ति के लिये एवं वृत्रासुर के असुरभाव की निवृत्ति की इच्छा करते हुए ऋषियों के कहने से इन्द्रने वृत्रासुर की हत्या करी इससे कोई दोष नहीं मानना चाहिये। इस प्रकार ७ सातवां नामापराध समाप्त हुआ धर्म, व्रत, दान, हवन और यज्ञादि सम्पूर्ण शुभ क्रियाओं के साथ नामकी तुलना करने से श्रीभगवन्नाम में न्यूनता आती है इसीसे धर्मादिकों के तुल्य श्रीहरिनाम को मानना ही श्रीभगवन्नामापराध है इसी कारण से अन्यत्र यह कहा है कि ब्राह्मणादिकों द्वारा जितने वेद के अक्षर पढ़े गये उतने ही मानों उन्होंने श्रीहरिनामों का उच्चारण कर लिया इसमें संदेह नहीं है इस अतिदेश वाक्य से भी श्रीभगवन्नाम का ही अधिक माहात्म्य आता है क्यों कि जिसमें जिसकी उपमा दीजाती है वह उपमान कहा जाता है और उपमेय से उपमान में अधिक गुण होते ही हैं जैसे (चन्द्रमुखी भार्या) यहां पर उपमेय मुख की अपेक्षा उपमान चन्द्रमें अधिक गुण हैं। इसी तरह श्रीवेदके अक्षर उपमेय हैं और श्रीभगवन्नाम उपमान है इससे वेदाक्षरों से भी अधिक प्रधानता श्रीभगवन्नाम ही की है। स्कन्दपुराण के प्रभास खण्ड के मधुर मधुर मित्यादि श्लोकमें भी श्रीकृष्णनाम को सम्पूर्ण वेद रूपीलता का उत्तम फल कहने ही से वेद की अपेक्षा श्रीभगवन्नाम प्रधान हुआ गौण नहीं कह सकते हैं तैसेही श्रीविष्णुधर्मोत्तर में भी कहा है कि जिस पुरुषने (हरि) यह दो अक्षर का नाम उच्चारण कर लिया मानों उस पुरुष ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद को पढ़ लिया, स्कन्दपुराण में श्रीपार्वतीजी अपने पुत्र श्रीस्वामिकार्त्तिकेयजी से कहती हैं कि हे पुत्र!

ऋग्वेदादिकों का कुछ भी पाठ न पढ़कर नित्यप्रति गाने योग्य गोविन्द यह हरिकेनामका ही मन लगाकर गान कीजिये। पद्म पुराण के श्रीरामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र में यही बात कही है कि श्रीविष्णु का हर एक नाम सम्पूर्ण वेदों से भी अधिक महत्ववाला है। इस प्रकार (८) आठवां श्रीभगवन्नामापराध समाप्त हुआ। अश्रद्दालु श्रीहरिसे विमुख और श्रीभगवन्नाम सुनने की इच्छा नहीं है ऐसे पुरुष को श्रीभगवन्नामका उपदेश करने से उपदेश करने वाले को श्रीभगवन्नामापराध लगता है यह (९) नौवां अपराध समाप्त हुआ—

"अथाश्रद्दधाने" इत्यादिनोपदेष्टुरपराधं दर्शयित्वोपदेश्यस्याह श्रुत्वेति। यतः अहंममादिपरमः। अहंताममताद्येकतात्पर्येण तस्मिन्ननादरवानित्यर्थः॥ "नामैकं यस्य वाचि स्मरणपथगतं" मित्यादौ देहद्रविणादिनिमित्तकपाषण्डशब्देन च दशापराधा-लक्ष्यन्ते पाषण्डमयत्वात्तेषाम्॥ तथा तद्विधानामेवापराधान्तरमुक्तं पाद्मवैशाखमहात्म्ये "अवमन्य च ये यान्ति भगवत्कीर्त्तनं नराः। ते यान्ति नरकं घोरं तेन पापेन कर्मणा" इति। एतेषां चापराधानामनन्य-प्रायश्चित्तत्वमेवोक्तं तत्रैव "नामापराधयुक्तनां नामान्येव हरन्त्यघम्। अविश्रान्तिप्रयुक्तानि तान्येवार्थ करणि च" इति। अत्र सत्प्रभृतिष्वपराधे तु तत्सन्तोषार्थमेव सन्ततनामकीर्त्तनादिकं समुचितम्। अम्बरीषचरितादौ तदेकतात्पर्यत्वेनापराधानां दर्शनात्।

उक्तञ्च नामकौमुद्याम् ॥ महदपराधस्य भोगएव निवर्त्तकः । तदनुग्रहोवा ॥ एवं श्रीनारदेनोक्तं बृहन्नारदीये "महिम्नामपि यन्नाम्नः पारं गन्तुमनीश्वराः । मनवोऽपि मुनीन्द्राश्च कथं तं क्षुद्रधीर्भजे" इति दशनामापराधाः ॥

०इस प्रकार उपदेष्टा के अपराधको दिखाकर अब उपदेश करने के योग्य पुरुष को भी श्रीभगवन्नामापराध लगता है क्योंकि जो पुरुष श्रीभगवन्नाम माहात्म्य को सुन कर भी प्रीति नहीं करता है तो वह पुरुष अधम अर्थात् नीच है क्योंकि श्रीभगवन्नाम माहात्म्य को सुनकर भी "मैं" "मेरे" तथा भोगादिविषयों में वह पुरुष लग जाता है यह (१०) दशवां नामापराध समाप्त हुआ, अब सब साधारण पुरुषों के जानने के लिये संक्षेप से १० दश श्रीभगवन्नामापराधों का लिखते हैं ।श्रीमहात्माओं की निन्दा एवं उनको दुष्ट वाक्यों से ताड़न करना यह (१) पहिला श्रीभगवन्नामापराध है ।सम्पूर्ण शक्तिवाले जो विष्णु उनकी शक्तिरूप शिवजी के गुण और नामादिकों को सम्पूर्ण शक्तिवाले विष्णु के गुण और नामादिकों को भिन्न भिन्न देखना यह (२) दूसरा श्रीभगवन्नामापराध है ।श्रीगुरुदेवजी का अनादर करना यह (३) तीसरा श्रीभगवन्नामापराध है ।वेद और शास्त्र की निन्दा करना यह (४) चौथा श्रीभगवन्नामापराध है ।श्रीहरिके नाममें अर्थवाद (केवल स्तुति मात्र) है ऐसा कहना, यह (५) पांचवां श्रीहरिनामापराध है ।श्रीभगवन्नाम माहात्म्य की गौणता अर्थात् मुख्य नहीं इस प्रकार दूसरी गतिका चिन्तन करना यह (६) छठवां श्रीभगवन्नामापराध है ।श्रीभगवन्नाम का सहारा लेकर पाप करना यह सातवां श्रीभगवन्नामापराध हुआ ॥धर्म, व्रत, दान, होम और यज्ञादिशुभक्रियाओं के तुल्य श्रीभगवन्नाममाहात्म्य को मानना यह आठवां श्रीभगवन्नामापराध हुआ ।श्रीहरि से विमुख जनको

श्रीहरिनाम का उपदेश करना, यह नवमां श्रीहरिनामापराध समझना चाहिये। जो पुरुष श्रीहरिनाम माहात्म्य को सुनकर भी (मैं) (मेरे) तथा भोगादिकों में लगे रहना यह (१०) दशवां श्रीहरिनामापराध है॥ नामैकं यस्य वाचि स्मरण पथगत मित्यादि श्लोक में देह द्रविणादिनिमित्तक पाषण्ड शब्द से दश श्रीभगवन्नामापराध दिखाये गये हैं क्योंकि दश श्रीभगवन्नामापराध ही पाखण्डमय होते हैं॥ तैसेही नामापराधों के तुल्य कर्मों की दश नामापराधों से अलग अपराधों में गिनती पद्मपुराण के वैशाख माहात्म्य में इस तरह कही है कि जे मनुष्य श्रीभगवान् के कीर्त्तन का अनादर कर चले जाते हैं तो वे पुरुष उस पाप भरे कर्म से घोर नरक को जाते हैं पहिले कहे हुए सम्पूर्ण अपराधों का श्रीभगवन्नाम से भिन्न कोई प्रायश्चित्त नहीं है यह प्रसङ्ग पद्मपुराण के वैशाख माहात्म्य में इस प्रकार कहा है कि नामापराध से युक्त पुरुषों के पापों को निरन्तर लिये गये ही श्रीभगवन्नाम हरण करते हैं और वेही श्रीभगवन्नाम, परमार्थ अर्थात् मुक्तिपूर्वक श्रीभगवान् की प्राप्ति भी करादेते हैं। यहाँ पर यह समझना चाहिये कि श्रीमहात्माओं के अपराध होने पर भी बारंबार श्रीभगवन्नामोच्चारण से ही सब अपराध नष्ट हो जाते हैं यह जो पहिले श्लोक में कहा है वह श्रीभगवन्नामोच्चारण महात्माओं के सन्तोष के लिये उचित ही है क्योंकि, अम्बरीष चरितादि में दुर्वासाजी को, इन्द्र, ब्रह्मा और महादेवजी ने जवाब दिया कि श्रीभगवान् के भक्त के अपराधों की रक्षा हम नहीं कर सकते हैं और कहाँ तक कहें कि सब से अधिक सामर्थ्यवाले श्रीभगवान ने भी, हे ब्राह्मणदेव! भक्तजनों के प्यारे मोक्ष तक चार पुरुषार्थों में आदर नहीं करते हुए केवल हमारी भक्ति करनेवाले साधु भक्तों से ग्रस्त अर्थात् किये हुए हृदयवाले हम सब कालमें पराधीन जीवकी तरह भक्तों के ही अधीन बने रहते हैं ऐसे अर्थवाले

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्रइव द्विज,
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः।

इस श्लोक से साधुओं का बड़ाई करते हुए अन्त में जवाब

दिया कि, अम्बरीषभक्त के अपराधी होने से हम कुछ नहीं कर सकते हैं उन्हीं के पास जाओ वही तुम्हारी रक्षा करेंगे। इससे यह सिद्ध भया कि जिस महात्मा का अपराध किया है तो वह महद-पराध उसी महात्मा की प्रसन्नता से छूट सकता है और कोई दूसरा उपाय नहीं है यही बात श्रीलक्ष्मीधरजी ने नामकौमुदी में कही है कि महात्माओं के किये हुए अपराधों का फल (दुःख) भोगने से अथवा जिन महात्माओं का अपराध किया है उन्हीं महात्माओं के कृपा कटाक्ष ही से छूटेगा। ऐसे ही श्रीनारदजी ने बृहन्नारदीयपुराण में कहा है कि बड़े बड़े मनु और मुनीश्वर जिन श्रीभगवान् के नाम की महिमाओं के भी पार जानेको असमर्थ हैं तो थोड़ी बुद्धिवाले हम किस प्रकार उन श्रीभगवान् को भज सकते हैं अर्थात् सर्व शक्तिमान् श्रीभगवान् कहाँ और थोड़ी शक्ति-वाले हम कहाँ बड़ा अन्तर है। इस प्रकार दश श्रीभगवन्नामापराधों का विस्तारपूर्वक वर्णन समाप्त हुआ।

अथ प्रसङ्गाद्विष्णुपुराणोक्ता द्वात्रिंशत्सेवाऽपराधा लिख्यन्ते ॥ " यानैर्वा पादुकैर्वाऽपि गमनं भगवद्गृहे देवोत्सवाद्यसेवाच अप्रणामस्तदग्रतः ॥ १ ॥ उच्छिष्टे वाऽथवाऽशौचे भगवद्दर्शनादिकम् । एकहस्त प्रणामश्च तत्पुरस्तात् प्रदक्षिणम् ॥ २ ॥ पादप्रसारणं चाग्रे तथा पर्यङ्कबन्धनम् । शयनं भक्षणं वाऽपि मिथ्याभाषणमेवच ३ उच्चैर्भाषा मिथो जल्पो रोदनानि च विग्रहः निग्रहानुग्रहौ चैव नृषु च क्रूर भाषणम् ॥ ४ ॥ कम्बलावरणञ्चैव परनिन्दा परस्तुतिः अश्लीलभाषणं चैव अधोवायुविमोक्षणम् ॥ ५ ॥ शक्तौ गौणोपचारश्च अनिवेदितभक्षणम् । तत्तत्का-

लोद्भवानां च फलादीनामनर्पणम् ॥ ६ ॥ विनियुक्त वशिष्टस्य प्रदानं व्यञ्जनादिके। पृष्ठीकृत्यासनं चैव परेषामभिवादनम् ॥ ७ ॥ गुरौ मौनं निजस्तोत्रं देवता निन्दनं तथा। अपराधास्तथा विष्णोर्द्वात्रिंशत्परिकीर्त्तिताः ॥ ८ ॥

श्री भगवन्नामापराधों के निरूपण के पीछे प्रसङ्ग से विष्णु पुराण में कहे हुए ३२ बत्तीस श्री भगवत्सेवापराध लिखते हैं ॥ शरीर की सामर्थ्य होनें पर श्रीभगवान् के मंदिर में पालकी से आदि लेकर अन्य सवारियों पर चढ़ कर, अथवा खड़ाऊं पर चढ़कर जाना १ पहिला सेवापराध है श्रीभगवान् के जन्माष्टम्यादि उत्सवोंके आने पर हर्षपूर्वक विशेष सामग्रियोंसे सेवा न करना २ दूसरा सेवापराध है ॥ श्रीभगवान् की सवारी आगे से आती हुई देखकर भी प्रणाम नहीं करना ३ यह तीसरा सेवापराध है जूठे मुख श्रीभगवान् के दर्शनादि करना- यह ४ चौथा सेवापराध है। पुत्रादि के जन्म होने पर और पिता इत्यादि के मरने पर जो सूतक आजाते हैं उन्हीं में श्रीभगवद्दर्शनादि करना। यह ५ वां सेवापराध है एक हाथ से प्रणाम करना ६ वां, इसी तरह श्रीभगवान् के सामने खड़े होकर वहां की वहां घूमकर परिक्रमा करना। ७ वां सेवापराध है ॥२॥ श्रीभगवान् के आगे पाद अर्थात् पावों को फैलाकर बैठना ८ वां इसी तरह पर्यङ्क बन्धन अर्थात् श्री ठाकुरजी के सामने दाहिने पांव को बांए पांव पर रखकर बैठना यह ९ वां सेवापराध है। श्रीभगवान् के सामने तान दुपट्टा सो जाना १० वां, श्रीठाकुरजी के सामने ही बैठ अथवा खड़े होकर भोजन करना ११ वां, झूंठ बोलना १२ वां, बहुत जोर से बोलना १३वां, दो चार जने मिलकर श्री ठाकुरजी के सामने संसार की बात चीत अर्थात् गपड़ सपड़ उड़ाना। १४ वां, संसार के दुःख से दुखित होकर श्री ठाकुरजी के सामने रोमना १५ वां, लड़ाई झगड़ा करना १६ वां, श्री ठाकुर

जी के सामने ही अपनी ओर से किसी पुरुष को दण्ड देना १७ वां और किसी पुरुष के ऊपर कृपा करना १८ वां, मनुष्यों के बीच में बैठकर किसी पुरुष से कठोर वाक्य बोलना १९ वां, कम्बल ओढ़कर सेवा में जाना २० वां, अन्य पुरुषों की निन्दा करना २१, वां एवं दूसरे मनुष्यों की स्तुति (बड़ाई) करना २२ वां, इसी दिल्लगी में खराब शब्दों का बोलना २३ वां, श्री ठाकुरजी के गर्भ मंदिर अर्थात् जगमोहन से भी भीतर के स्थान में अपान वायु का छोड़ना २४ वां अच्छे अच्छे पदार्थों से थाल सजाकर श्री ठाकुरजी के सामने अर्पण करने की सामर्थ्य होने पर भी सामान्य निरस पदार्थ बनाकर भोग लगाना २५ वां, श्री ठाकुरजी के बिना भोग लगाये पहिले पहिल अपने आप भोजन कर लेना २६ वां, वसन्तादि ऋतुओं में उत्पन्न हुए नये फलों का श्री ठाकुरजी के बिना भोग लगाये अपने आपही पाय लेना २७ वां, सेवापराध है किसी उत्सव में श्रीठाकुर जी के भोग के निमित्त आई हुई सामग्रियों में से भोग लगाने के बाद बचे हुए मसाले दही इत्यादि को दूसरे दिन फिर व्यञ्जनादि कों में डालकर श्री ठाकुरजी के अर्पण करना २८ वां, पूजा करने योग्य पुरुषों के पीछे आसन वा दूसरे पुरुषों को दण्डवत् प्रणाम कर श्री गुरुदेव महाराज की स्तुति (बड़ाई) सुनकर तो मौन (चुप) हो जाना और अपनी बड़ाई करना ३१ वां, अपने इष्ट देव को छोड़कर दूसरे देवताओं की निन्दा करना ३२ वां सेवापराध है श्रीविष्णुपुराण के अनुसार ३२ बत्तीस सेवापराधों का वर्णन समाप्त हुआ।

तथा वाराहे— "द्वात्रिंशदपराधाये कीर्त्यन्त्ये वसुधे मया ॥ वैष्णवेन सदा तेतु वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ ये वै न वर्जयन्त्येतानपराधान् मयोदितान् सर्वधर्म परिभ्रष्टाः पच्यन्ते नरके चिरम् ॥ १० ॥ राजान्नभक्षणं चैकमापद्यपि भयावहम् । ध्वान्तागारे हरेः स्पर्शः परं

सुकृतनाशनम् ॥ ११ ॥ तथैव विधिमुल्लङ्घ्य सहसा स्पर्शनं हरेः ॥ द्वारोद्घाटोविना वाद्यं क्रोडमांसनिवेदनम ॥ १२ ॥ पादुकाभ्यां तथा विष्णोर्मन्दिरायोपसर्पणम कुक्कुरोच्छिष्टकलनं मौनभङ्गोऽच्युतार्चने ॥ १३ ॥ तथा पूजनकालेच विड्डुत्सर्गोपसर्पणम श्राद्धादिकमकृत्वा च नवान्नस्य च भक्षणम ॥ १४ ॥ अदत्त्वा गन्ध माल्यादि धूपनं मधुघातिनः अकर्मण्यप्रसूनेन पूजनं च हरेस्तथा ॥ १५ ॥ अकृत्वा दन्तकाष्ठंच कृत्वा निधुवनं तथा । स्पृष्ट्वा रजस्वलां दीपं तथा मृतकमेव च ॥ १६ ॥ रक्तं नीलमधौतं च पारक्यं मलिनं पटम् । परिधाय मृतं दृष्ट्वा विमुच्यापानमारुतम् ॥ १७ ॥ क्रोधं कृत्वा श्मशानं च गत्वा भुक्त्वाप्यजीर्णभुक् । भक्षयित्वा क्रोडमांसं पिण्याकं जालपादकम् ॥ १८ ॥ तथा कुसुम्भशाकञ्च तैलाभ्यङ्गं विधायच । हरेः स्पर्शोहरेः कर्मकरणं पातकावहम ॥ १९ ॥ किञ्च तत्रैव । ममशास्त्रं वहिष्कृत्य अस्माकं यः प्रपद्यते । मुक्त्वा च मम शास्त्राणि शास्त्रमन्यत् प्रभाषते ॥ २० ॥ मद्यपं तु समासाद्य प्रविशेद्भवनं मम । योमे कुसुम्भशाकेन भापणं कुरुते नरः ॥ २१ ॥ अपिच । ममदृष्टेरभिमुखं ताम्बूलं चर्वयेत्तु यः उरवूकपलाशस्थैः पुष्पैः कुर्य्या-

न्ममार्च्चनम् ॥ २२ ॥ ममार्चामासुरेकाले यः करोति विमूढधीः । पीठासनोपविष्टोयः पूजयेद्वा निरासनः ॥ २३ ॥ वामहस्तेन मां धृत्वा स्नापयेद्योविमूढधीः । पूजा पर्य्युषितैः पुष्पैः ष्ठीवनं गर्वकल्पनम् ॥ २४ ॥ तिर्य्यक्पुंड्रधरोभूत्वा यः करोति ममार्च्चनम् । याचितैः पत्रपुष्पाद्यैर्यः करोति ममार्चनम् ॥ २५ ॥

० तैसे ही वाराहपुराण में श्री वाराहभगवान् पृथ्वी से कहते हैं कि हे पृथ्वि, हम तुम्हारे लिये ३२ सेवापराधों को कहते हैं लेकिन वे ३२ बत्तीस सेवापराध तो वैष्णव मात्र को सदा प्रयत्न पूर्वक अवश्य छोड़ ही देने चाहिये ॥ ९ ॥ जो पुरुष हमारे कहे हुए इन ३२ बत्तीस अपराधों को नहीं छोड़ते हैं वे पुरुष सब धर्मों से भ्रष्ट होते हुए अन्तमें बहुत काल तक नरकों को यातनाओं को भोगते हैं ॥ १० ॥ आपत्ति के समय में भी भय के देने वाले राजा के अन्नका भोजन करना १ पहिला सेवापराध है और अंधेरे घरमें श्रीहरि का स्पर्श करना तो केवल पुण्य का नाश करने वाला ही होता है अर्थात् बिना दीपक जलाये श्रीभगवान् का स्पर्श करना २ दूसरा सेवापराध है ॥ ११ ॥ तैसे ही सेवा विधि का उल्लङ्घन (छोड़) कर एकबारगी श्रीहरि को छूलेना यह ३ तीसरा अपराध है। बिना बाजे बजाये श्रीभगवान् के मन्दिर का दरवाजा खोलना ४ चौथा अपराध है । मांस भोग लगाना ५ वां। खड़ाऊं पहर कर श्रीविष्णु मन्दिर के लिये जाना ६ वां कुत्ता के छुए हुये पदार्थों का श्रीभगवान् के आगे अर्पण करना ७ वां श्रीभगवान् का पूजन मौन होकर करना चाहिये और मौन छोड़ देना ८ वां ॥ पूजा करते करते ही बीच में उठकर शौच (टट्टी) जाना ९ वां श्राद्धादिक कर्मों को नहीं करि के नये अन्नका भोजन करना १० वां ॥ श्रीभगवान् के लिये पहिले केशरिया श्रीखण्ड चन्दन तुलसी और पुष्पमालाओं को न चढ़ा

कर धूप आरती कर देना ११ वां तैसे ही शास्त्रकारों ने सब फूलों की कली एवं कनेर धतूर आक कटेहरी सेमर और सिरस के फूल श्री ठाकुर जी के ऊपर चढ़ाने का निषेध (मना) किया है और फिर इन्हीं सब फूलों को कलियों द्वारा एवं निषिद्ध पुष्पों से श्रीहरि का पूजन करना १२ बारह वां ॥ काष्ठ (लकड़ी) की दांतुन न करिके सेवामें चला जाना १३ वां तैसे ही मैथुन अर्थात् स्त्रीसङ्ग करि के पूजन करना १४ वां रजस्वला (मासिक धर्मवाली) स्त्री को छू कर पूजन करना १५ वां, दीप छूकर १६ वां, मरेहुए को छूकर १७ वां, रेशमी लाल वस्त्रको छोड़कर और रक्त (लाल) कपड़ा ओढ़ कर पूजन करना १८ वां, इसी तरह रेशमी नील वर्ण वस्त्र को छोड़कर और नीला वस्त्र पहिन कर पू० १९ वां, बिना धुले हुए वस्त्र पहिनकर पू० २० वां, पराये वस्त्र को पहिनकर पू० २१ वां, मैले कपड़े को पहिनकर पू० २२ वां, मरे हुए पुरुष को देखकर पूजा में जाना २३ वां, अधोवायुका छोड़ना २४ वां, । क्रोध (रोष) करिकें स्पर्श करना २५ वां, एवं श्मशान (मुर्दे घाट) जाकर स्पर्श० २६ वां, पहिले पाये हुए पदार्थों के बिना पचे हुए फिर भोजन करिकें २७ वां, मांस का भक्षण कर २८ वां, विएयाक (खर) भोजन करिकें २९ वां, हंस और बतक का भोजन कर ३० वां, । कुसुम्भ अर्थात् कसूम, कर का शाकपाय कर स्पर्श० ३१ वां, और सब शरीर में तेल लगा, बिना स्नान किये हुए ही श्रीहरि का स्पर्श करना और उन्हीं श्रीठाकुरजी की सेवा में लगिजाना ३२ वां अपराध है। इस प्रकार सब अपराधों से पाप लगता है ।

श्रीवाराहपुराण में और भी लिखा है कि जो पुरुष मेरे श्रीनारदपञ्चरात्रादि और हमारी भक्ति के प्रतिपादक ग्रन्थों का अनादर करिकें मेरी उपासना करता है । विशेष करिकें हमारे स्वरूप के प्रतिपादक श्रीमद्भागवतादि शास्त्रों को शास्त्र न कहकर जो पुरुष अन्य शास्त्रों को ही शास्त्र कहता है । और जो पुरुष मदिरा पान करने वाले पुरुष का सङ्ग करिकें हमारे

मन्दिर में प्रवेश करता है। और जो पुरुष यदम्म के शाक के सहित हमारे आगे नैवेद्य का अर्पण करता है तो वह पुरुष अपराधी होता है ॥ २१ ॥ और भी कहा है कि जो पुरुष मेरी दृष्टि के सामने पान अर्थात् बीड़ा पाते हैं जो पुरुष उरडुक (अरण्डी) अर्थात् अरण्डआ के पत्ता में धरेहुए फूलों से मेरी पूजा करता है ॥ २२ ॥ मूढ़ बुद्धिवाला जो पुरुष असुरों के समय अर्थात् आधी-रात के लगभग मेरी पूजा करता है। जो काष्ठ के पट्टा, चौकी पर बैठ कर पूजा करता है। और जो पुरुष आसन पर न बैठकर पूजा करता है ॥ २३ ॥ और जो मूढ़ पुरुष बायें हाथ से पकड़कर हमको स्नान कराता है, माली को छोड़कर जो पुरुष अपने हाथ से लाये हुए बासी पुष्पों से हमारी पूजा करता है जो पुरुष श्रीहरि के मन्दिर में थूकता है जो पुरुष अपने अहङ्कार को प्रकाशित करता है अर्थात् हमारे बराबर संसार में कोई नहीं है ऐसा कहता है ॥ २४ ॥ और जो त्रिपुण्ड लगाकर पूजा करता है। जो पुरुष अपनी सामर्थ्य होने पर भी दूसरे पुरुषों के पास जाकर प्रार्थना पूर्वक मांगे हुए पत्र और पुष्पादिकों से हमारी पूजा करता है तो वह अवश्य ही अपराधी है ॥ २५ श्लो० ॥

अप्रक्षालितपादोयः प्रविशेन्मम मन्दिरम् । अवैष्णवस्य पक्वान्नं योमह्यं विनिवेदयेत् ॥ २६ ॥ अवैष्णवेषु पश्यत्सु मम पूजां करोति यः । अपूजयित्वा विघ्नेशं सम्भाष्यच कपालिनम् ॥ २७ ॥ नरः पूजां तु यः कुर्य्यात्स्नपनं च नखाम्भसा अमौनी घर्मलिप्ताङ्गो मम पूजां करोति यः ॥ २८ ॥ ज्ञेयाः परेऽपि बहवोऽपराधाः सदसन्मतैः । आचारैः शास्त्रविहितनिषिद्धातिक्रमादिभिः ॥ २९ ॥ तत्रापि सर्वथा

कृष्णनिर्म्माल्यं तु न लङ्घयेत् । तथाच नारसिंहे शन्तनुं प्रति नारदवचनम् । अतः परं तु निर्म्माल्यं न लङ्घय महीपते । नरसिंहस्य देवस्य तथाऽन्येषां दिवौकसाम् ॥ ३० ॥ कृष्णस्य परितोषार्थं तस्य पथमाचरेत् । नान्यदेवस्य निर्म्माल्यमुपयुञ्जीत च कचित् ॥ ३१ ॥ तथा विष्णुधर्मोत्तरे । आपद्यपि च कष्टायां देवेशशपथं नरः । न करोतिहियो ब्रह्मंस्तस्य तुष्यति केशवः ॥ ३२ ॥ न धारयति निर्माल्यमन्य-देवोद्भूतं तु यः । भुङ्क्ते न चान्य नैवेद्यं तस्य तुष्यति केशवः ॥ ३३ ॥ अथ द्वात्रिंशत्सेवापराधशमनं लिख्यते । संवत्सरस्य मध्ये च तीर्थे शौकरके मम । कृतोपवासः स्नानेन गङ्गायां शुद्धिमाप्नुयात् ॥ ३४ ॥ मथुरायां तथाप्येवं सापराधः शुचिर्भवेत् । अनयोस्ती-र्थयोरङ्के यः सेवेत्सुकृती नरः ॥ ३५ ॥ सहस्रजन्म-जनितानपराधान् जहाति सः । स्कान्दे "अहन्यहनि योमर्त्योगीताध्यायं तु संपठेत् । द्वात्रिंशदपराधैस्तु अहन्यहनि मुच्यते" ॥ ३६ ॥ तथा स्कान्दे कार्त्तिक-माहात्म्ये "तुलस्या कुरुते यस्तु शालग्रामशिलार्चनम् । द्वात्रिंशदपराधांश्च क्षमते तस्य केशवः ॥ ३७ ॥ द्वादश्यां जागरे विष्णोर्यः पठेत् तुलसीस्तवम् ।

द्वात्रिंशदपराधांश्च क्षमते तस्य केशवः ॥ ३८ ॥ यः करोति हरेः पूजां कृष्णशस्त्राङ्कितोनरः । अपराध-सहस्राणि नित्यं हरति केशवः ॥ ३९ ॥

श्रीवृन्दावनवास्तव्य श्रीहरिप्रियाशरणोपनामक पं० दुलारेप्रसाद शास्त्रिणा संगृहीता श्रीभगवन्नामचन्द्रिका समाप्ता ।

हाथ पांव धोये बिना जो पुरुष हमारे मन्दिर में घुसता है। वैष्णव को छोड़कर दूसरे पुरुष के हाथ से बने हुए अन्न अर्थात् पदार्थों को हमारे लिये अर्पण करता है ॥ २६ ॥ जो पुरुष वैष्णव नहीं हैं लेकिन उन्हीं पुरुषों के देखते देखते ही जो पुरुष हमारी सेवा करता है। और पहिले विघ्नगणेशजी की पूजा न करिके हमारी पूजा करता है। और कपालधारी अर्थात् खोपड़ी लिये हुए अघोर मतवाले पुरुष के साथ बात चीत कर जो पुरुष हमारी पूजा में लगजाता है ॥ २७ ॥ जो पुरुष नख डुबोये हुए जलसे हमको स्नान कराता है। जो पुरुष मौनव्रत छोड़कर पूजा करता है। पसीना से तराबोर देहवाला जो पुरुष हमारी पूजा करता है ॥ २८ ॥ सत्पुरुषों के असम्मत अर्थात् माननीय नहीं एवं शास्त्र और सम्प्रदायमार्ग से निषिद्ध आचारों से भी पहिले कहे हुए अपराधों से अलग अनेक अपराध बन जाते हैं वे भी जानने योग्य हैं। इस प्रकरण का सारांश यह है कि इन सब अपराधों से सब पुरुष अपराधी हो जाते हैं ॥ २९ ॥ श्रीहरि के ऊपर चढ़े हुए निर्माल्य अर्थात् तुलसीदल पत्र पुष्पादिकों का कभी लङ्घन अर्थात् तिरस्कार न करै। इस विषय में श्रीनृसिंह-पुराण में श्रीशन्तनुमहाराज के प्रति श्रीनारदमुनि ने कहा है कि हे राजन्! अब से कभी भी श्रीनरसिंहदेव और अन्य देवताओं के निर्माल्य अर्थात् चढ़े हुए पत्र पुष्पादिकों का लङ्घन नहीं करनाजी ३० ॥ जो वैष्णव श्रीकृष्णचन्द्र को प्रसन्न करने की इच्छा रखना

है तो वह वैष्णव स्वप्न में भी श्रीकृष्ण की शपथ (सौगन्द) न खाय, श्रीभगवान् से अन्यदेव का निर्माल्य अर्थात् चढ़े हुए पत्र पुष्पादिकों को किसी समय में भी ग्रहण न करै ॥ ३१ ॥ ऐसा प्रकार श्रीविष्णु-धर्मोत्तर में लिखा है कि हे ब्राह्मण ! जो वैष्णव भारी से भारी आपत्ति आनेपर श्रीभगवान् की शपथ (सौगन्द) नहीं करता है तो उसके ऊपर श्रीकेशव भगवान् सदा प्रसन्न ही रहते हैं ॥ ३२ ॥ जो वैष्णव श्रीभगवान् से अन्य देवताओं चढ़े हुए फूल मालाओं को अपने कण्ठ में धारण नहीं करता है और न कभी दूसरे देव के अर्पण किये हुए नैवेद्य अर्थात् प्रसाद को पाता है तो उसके ऊपर केशवभगवान् प्रसन्न ही रहते हैं ॥ ३३ ॥ अब इसके पीछे किसी वैष्णव से कहे हुए ३२ बत्तीस श्रीभगवत्सेवापराध जो अज्ञान अर्थात् भूल से बनजांय तो उनकी शान्ति के उपाय लिखते हैं। जो कोई भगवत्सेवापराधी वैष्णव एक वर्ष के भीतर ही हमारे वाराहक्षेत्र अर्थात् सोरोंजीमें एक दिन व्रत रहकर श्रीगङ्गाजी में स्नान करते ही अपराध से छूटजाता है ॥ ३४ ॥ इसी प्रकार श्रीमथुरापुरी में भी श्रीवाराहभगवान् के दर्शन कर श्रीयमुनाजी में स्नान करने से ही अपराध से छूट जाता है, इन दोनों तीर्थों के समीप में रहकर जो पुण्यवान् पुरुष श्रीभगवान् की सेवा करता है वह सेवापराधों से छूटजाता है ॥ ३५ ॥ और एक जन्म की क्या कहें अनेक जन्मों के सेवापराधों से वह वैष्णव छूटजाता है। स्कन्दपुराण में कहा है कि जो वैष्णव प्रतिदिन श्रीमद्भगवद्गीता के एक अध्याय का पाठ करै तो वह वैष्णव नित्यप्रति किये हुए ३२ बत्तीस सेवापराधों से छूटजाता है ॥ ३६ ॥ तैसे ही स्कन्द पुराण के कार्त्तिक माहात्म्य में लिखा है कि जो वैष्णव श्रीतुलसी-दलों से श्रीशालग्राम भगवान् का पूजन करता है तो केशवभगवान् उस वैष्णव के ३२ बत्तीस सेवापराधों को क्षमा करते हैं ॥ ३७ ॥ द्वादशी अर्थात् एकादशी के दिन जागरण करता हुआ वैष्णव श्रीतुलसीस्तोत्र का पाठ करै तो श्रीकेशवभगवान् ३२ बत्तीस सेवा पराधों को क्षमा करते हैं ॥ ३८ ॥ जो वैष्णव पुरुष श्रीभगवान् के शङ्ख चक्रादि शस्त्रों से अङ्कित होकर श्रीहरिकी पूजा करता है तो उस पुरुष के नित्य प्रति के किये हुए हजारों अपराधों को श्रीकेशव

भगवान् हरण कर लेते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३९ ॥ शुभंभूयात् ॥

श्रीवृन्दावन वास्तव्य श्रीनिम्बार्क पाठशालाध्यापक
पं० रामप्रसाद कृता श्रीभगवन्नामचन्द्रिका भाषाटीका
॥ समाप्ता ॥

श्रीवृन्दावन निवासी पं० श्रीनिम्बार्क पाठशाला के अध्यापक पं० रामप्रसादशर्मा की बनाई हुई श्रीभगवन्नाम चन्द्रिका की भाषा टीका समाप्त हुई।

श्रीनिकुंजविहारिणे नमः

भगवद्गुणचन्द्रिका।

राधाकृष्णौ प्रणम्यैषा भगवद्गुणचन्द्रिका
श्रीदुलारेप्रसादेन स्वात्मशुद्ध्यै विरच्यते।

तथा चाद्याचार्य्यैः श्रीसुदर्शनावतारैः श्रीनिम्बार्क मुनीन्द्रैर्वेदान्तकामधेनौ दशश्लोक्यां तुर्य्यश्लोके उक्तम्। स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशि" मिति स्वभावतोनिसर्गतः अपास्ता निरस्ताः समस्ता दोषा यस्मात्स तं तथैवोक्तं स्कान्दे "निर्दोषपूर्णगुणविग्रह आत्मतन्त्रो निश्चेतनात्मकशरीरगुणैर्विहीनः॥ आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः सर्वत्रगः स्वगतभेदविवर्जितात्मा" इति। अस्यार्थः निर्गतादोषा यस्मात्सचासौ पूर्णगुणविग्रहश्चेति॥ भक्तचित्तसङ्कोचजनकत्वं दोषत्वम्। तेचोक्ता विष्णुयामलतन्त्रे "मोहस्तन्द्रा भ्रमोरूक्षरसता काम उल्वणः॥ लोलता मदमात्सर्य्ये हिंसा स्वेदपरिश्रमौ॥ आलस्यं चैव माशङ्का चाकाङ्क्षा विश्वविभ्रमः॥ विषमत्वं परापेक्षा दोषाअष्टादशोदिताः॥ तथाच तत्रैव अष्टादशमहा-

दोषरहिता भगवत्तनुः ॥ सर्वैश्वर्य्यमयी सत्यविज्ञानानन्दरूपिणी" इति अथवा अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाइति पतञ्जल्युक्तयोगसूत्रोक्ता दोषाग्राह्यास्ते अपास्ता दूरीभूता यस्य स तमिति अशेषास्सर्वे ये कल्याणगुणास्तेषामेकराशिम् ॥ भक्तजन सुखहेतवोधर्मा एव गुणाः । तेच यावदात्मवृत्तित्वात्स्वरूपभूताएव तथैवोक्तं ब्रह्मतर्के "गुणैस्वरूपभूतैस्तु गुणवसौ हरिरुच्यते । न विष्णोर्न च मुक्तानां कापि भिन्नोगुणोमतः ॥ गुणाःस्वरूपमेवास्ये" ति तेच भगवद्गुणास्त्रिविधाः कायवाङ्मानसाश्रयास्ते च सर्वएवैते गुणाः अप्राकृता इति श्रीभगवतैवोद्धवं प्रत्युक्तम् भा० स्कं० ११ अ० १३ "मां भजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम् ॥ सुहृदं प्रियमात्मानं साम्यासङ्गादयोगुणाः" एतेच भगवद्गुणा अनन्ता असंख्याश्च तथाच श्रुतयः "विष्णोर्नुकं वीर्य्याणि प्रावोचत् यः पार्थिवानि विममे रजांसि योअस्कम्भायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ न ते विष्णो जायमानो न जातो देवस्य महिम्नः परमन्तमाप" सहस्रधा महिमानः सहस्रम् ॥ पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियाच ॥ विवक्षितगुणोपपत्तेश्च ।

अ० १ । पा० २ । सू० २। सर्वोपेताच सा तद्दर्शनात् अ० २ । पा० १ । सू० २६ तथा भा० स्कं० २ अ० ७ श्लो० ४० विष्णोर्नुवीर्य्यगणनां कतमोऽर्हतीह यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि ॥ चस्कम्भ यः स्वरंहसा ऽस्खलता त्रिपृष्ठं यस्मात्त्रिसाम्यसदनादुरु-कम्पयानम् ॥

प्रायः लोक में देखा गया है कि कोई महानुभाव पुरुष को किसी नगर या गांव में आकर जब किसी के साथ परिचय (जान पहिचान) की इच्छा है तबतो विना नाम लिये नामी (देव दत्तादि) का पता नहीं चलता है और नामी के पते चलने परभी जब तक उस नामी देवदत्तादि के गुणों का ठीक ठीक ज्ञान नहीं होता है तब तक नामी अर्थात् नामवाले में ठीक ठीक श्रद्धा भक्ति उत्पन्न नहीं होती है विना श्रद्धाभक्ति के अपना प्रयोजन भी नहीं बनता है इसी प्रकार श्रीभगवन्नाम लेने से नामी श्रीभगवान् के स्वरूप का परिचय यथार्थ होता है उसके अनन्तर गुणों के ज्ञान से श्रद्धाभक्ति उत्पन्न होती है बस श्रद्धाभक्ति अनन्तर ही श्रीभगवान् की प्राप्ति रूप प्रयोजन अवश्य बन ही जाता है, इससे श्रीभगवान् के गुण जानने के लिये हम श्रीभगवन्नामचन्द्रिका के पीछे अपनी बुद्धि की शुद्धि के लिये "श्रीभगवद्गुण चन्द्रिका" अर्थात् श्रीभगवान् के गुणों के प्रकाश करनेवाली बहुत ही छोटी पुस्तक लिखते हैं ॥ इसी विषय को लेकर श्रीसुदर्शनभगवान् के अवतार, आद्याचार्य, श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्रदेवजी ने वेदान्त कामधेनु नामक दशश्लोकी के (स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषम्) इत्यादि ४ चौथे श्लोक में विलक्षण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के विशेषण कहे हैं। (स्वभावतः) इसका यह अर्थ है कि स्वभाव अर्थात् विलक्षण प्रभावशाली तेज के मारे पहिले से पहिले ही अलग हटे रहते हैं। सम्पूर्ण दोष जिनसे ऐसे विलक्षण गुणवाले श्रीपरब्रह्म श्रीकृष्ण-

चन्द्रका हमध्यान करते हैं, जैसे हम वर्णन करते हैं तैसे ही स्कन्द-पुराण में (निर्दोषपूर्णगुणविग्रहः) इत्यादि श्लोक से स्पष्ट कहा है, इसका अर्थ यह है कि, स्वभाव ही से हटे हैं दोष जिनसें और पूर्णगुणों से युक्त है विग्रह नाम शरीर जिनका और आत्मतन्त्र नामस्वतन्त्र और जड़ शरीर के गुणनसें रहित और आनन्दमात्र ही हैं हाथ, पाम मुख, उदरादिक जिनके और सर्वत्रग नाम सब जगह व्यापक और स्वगत भेदविवर्जितात्मा स्वगतभेद से रहित है आत्मानाम देह जिनका अर्थात्—मनुष्यों के हाथ, पावों में जैसे अलग अलग व्यवहार होता है तैसा व्यवहार श्रीभगवान् के शरीर में नहीं माना जाता है क्योंकि शास्त्रकारोंने श्रीभगवान् का शरीर आनन्दमय माना है। जिससे भक्तों के चित्त में सङ्कोचहोय यह दोष का लक्षण है वे दोष विष्णुयामलतन्त्र में कहे हैं कि मोहनाम अविवेक,तन्द्रा अर्थात् झपनी लगना,भ्रमनाम भ्रान्ति,रुक्षता,रुखापन काम विषयों की इच्छा करना, उल्बणता, नाम उग्रपना लोलता नाम चञ्चलता, मद अहंकार, मात्सर्य दूसरे का उत्कर्ष न सहना, हिंसा दूसरे के प्राणोंको लेना, स्वेद पशीना, परिश्रम, थकावट आलस्य, सामर्थ्य होनेपर भी काम न करना, आशङ्का किसी से शंकित होना, आकाङ्क्षा इच्छा करना, विभ्रविभ्रम सबवस्तुमात्र में भूल होना, विषमता, अपने पराये में भेद करना, परापेक्षा सब कार्यों में दूसरे से सहायता लेना ये अठारह दोष कहे हैं। और विष्णुयामल में यह भी कहा है कि अठारह महादोषों से रहित और सर्वैश्वर्यमयी सत्यविज्ञान आनन्दरूपिणी श्रीभगवान् की तनु अर्थात् शरीर है अथवा श्रीपतञ्जलिप्रोक्त योग सूत्र में कहे हुए दोष यहांपर ग्रहण करना अविद्या १ अर्थात् तम अस्मिता २ अर्थात् मोह राग ३ अर्थात् महामोह द्वेष ४ अर्थात् तामिस्र अभिनिवेश ५ नाम अन्धतामिस्र स्वरूप के आवरण करनेवाले दोषको तम कहते हैं देहादिकों में जो अहंबुद्धि है उसको मोहकहते हैं विषयभोगों में जो इच्छा है उसको महामोह और क्रोधको तामिस्र और द्रव्यादिकों के नाश में आत्मा का नाश मानना इसको अन्धतामिस्र कहते हैं। इसी प्रकार श्रीभगवान् सब भक्त वात्सल्यादिगुणों की मुख्य राशि भी हैं और भक्तजनों को सुख

देनेवाले श्रीभगवान् के धर्म ही गुण लिये गये हैं॥ यहां पर एक बात विचार करने की यह है कि स्थूल शरीर से युक्त जीवों में विद्या पढ़ने से गुण आते हैं और जबतक स्थूल शरीर से युक्त जीवात्मा रहेंगे तब तक ही वे गुण रहेंगे और स्थूल शरीर के नष्ट होते ही सबजीवों के गुण चले जाते हैं ऐसा व्यवहार परमात्मा में नहीं हैं क्योंकि परमात्मा नित्य अर्थात् सदा ही रहनेवाले हैं और उनके सम्पूर्ण गुण भी सदा रहते ही हैं और श्रीभगवान् का शरीर भी नित्य है इस कारण से श्रीभगवान् के वे सम्पूर्ण भक्त-वात्सल्यादि गुण स्वरूपभूत अर्थात् गुण गुणी व्यवहार होने परभी नित्य और स्वतः सिद्ध होने से स्वरूप भूत ही कहे जाते हैं। तैसाही ब्रह्मतर्क में कहा है कि स्वरूप भूतगुणों से ही यह श्रीहरि गुणी कहे जाते हैं विष्णु और मुक्त पुरुषों के गुण कहीं पर भी भिन्न अर्थात् अलग नहीं माने गये हैं इससे श्रीभगवान् के गुण स्वरूप भूत ही हैं और वे भगवद्गुण श्रीभगवान् के शरीर—वाणी और मनमें रहने से तीन तरह के हैं और वे सम्पूर्ण ही भगवद्गुण अप्राकृत अर्थात् दिव्य हैं यही बात श्रीमद्भागवत ११ एकादश स्कन्ध १३ तेरहवें अध्याय के (मांभजन्ति) इत्यादि श्लोक से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराज ने उद्धव से कहा है कि, सम्पूर्ण समता और असङ्गादिक गुण प्राकृत गुणों से रहित, किसी की भी चाह नहीं करनेवाले सब के सुहृद और प्यारे आत्मा हमको ही भजते हैं अर्थात् नित्य हममें निवास करते हैं। ए सम्पूर्ण श्रीभगवान् के गुण अनन्त और अनगिनती हैं यही बात (विष्णोर्नुकं वीर्याणि) इत्यादि श्रुतियोंने अपने कण्ठरवसे कही है कि पृथ्वी की धूलि के कणोंकी गिनती करने में परम चतुर पुरुष है लेकिन हम तर्क से कहते हैं कि जिस विष्णुने वामनावतार में तीन पांव पृथ्वी को नापने के समय ब्रह्मादि देवताओं के सहित वर्त्तमान सत्यलोक को धारण किया उस विष्णुभगवान् के पराक्रमों को क्या वह परम विवेकी पुरुष कह सकता है अर्थात् नहीं कह सकता है क्योंकि हे विष्णो! आज कलका पुरुष अथवा बहुत कालका उत्पन्न हुआ कोई भी पुरुष केवल स्वतः प्रकाशमान देव आपकी महिमा के अन्त को ही नहीं पहुंचा तो महिमा का कहना तो

बहुत दूर रहा क्योंकि महिमाहीं आपकी हजारों तरह की हैं॥ ऐसेही श्रीकृष्ण परब्रह्म की शक्तिपरा अर्थात् श्रीकृष्ण के स्वरूप से विलक्षण नाम भिन्न है विविधा नाम, अनन्त और अचिन्त्य प्रकार वाली दूसरे प्रमाणों के बिना ही सुनी जाती है जैसे श्रीभगवान् का स्वरूप अनादि और अनन्त होने से नित्य ही है, तैसे ही पराशक्ति स्वाभाविकी अर्थात् नित्य ही है श्रीभगवान् की शक्ति अनिर्वचनीय मिथ्या और औपाधिकी कहनेवालों के मुखमें स्वाभाविकी यह पद ही धूलि भरता है॥ श्रीभगवान् के सम्पूर्ण गुण कर्मादिकों के ग्रहण करने के लिये श्रुतिमें चकार पढ़ा है इससे भगवान् की शक्ति ही नित्य है यह बात नहीं है किन्तु श्रीभगवान् के ज्ञान, बल, क्रिया और सम्पूर्ण गुण कर्मादिक भी नित्य ही हैं इसी विषय को श्रीवेदव्यासजीने ब्रह्मसूत्र १ अ० २ पा० २ सू० दूसरे (विविक्षितगुणोपपत्तेश्च) इस सूत्र से इस प्रकार दर्शाया है कि कहने को इष्ट जो सत्य सङ्कल्पादि गुण वे सम्पूर्ण गुण श्री कृष्ण रूप परब्रह्म में नित्य ही विद्यमान रहते हैं । फिर भी यही विषय ब्रह्म सूत्र २ अ० १ पा० २९ वें (सर्वोपेता च सा तद्दर्शनात्) इस सूत्र से इस प्रकार दर्शाया है कि सम्पूर्ण शक्तियों से युक्त वह श्री कृष्ण रूप देवता हैं। इसीसे सब कार्य करने को और न करनेको और अन्यथा करने को समर्थ हैं क्योंकि सब सामर्थ्य से युक्त है यह बात वेद से भी आती है उन वेद वचनों को भाष्यकार ने इस प्रकार दिखाया है कि, पराऽस्यशक्तिर्विविधैवश्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियाचेत्यादि इसका यह अर्थ है कि उस परमात्मा की पराशक्ति स्वभाव सिद्ध है। इसी विषयका निरूपण श्रीमद्भागवत २ स्क० ७ अ० के ४०वें (विष्णोर्नुवीर्य्यगणनाम्) इत्यादि श्लोक से श्रीब्रह्माजी ने देवर्षि श्रीनारद मुनि से इस प्रकार किया है कि हे नारद! मैंने तेरे आगे संक्षेप से परमात्मा की विभूतियोंका वर्णन किया है लेकिन विस्तार से परमात्मा की विभूतियों का वर्णन कोई पुरुष नहीं कर सकता है इस संसार में जिस बुद्धिमान पुरुष ने पृथ्वी सम्बन्धी परमाणुओं की भी गिनती करलीनी है ऐसा प्रभावशाली भी कोई पुरुष श्री विष्णु के पराक्रमों की गिनती

करने को क्या योग्य हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता है कारण यह है कि वामनावतार में विना रोक टोक के बढ़ते हुए अपने पाँव के वेग से प्रकृतिरूप आवरण से लेकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विशेष करके थरथर काँपता हुआ जब गिरने योग्य होगया तब श्रीवामनदेव ने ही सत्यलोक अथवा ब्रह्माण्डभर को अपने पराक्रम से रोक कर जहाँ का तहाँ स्थिर करदिया तो बतलाइये ऐसे प्रभाव वाले श्रीविष्णु के पराक्रमों की गिनती के लिये कलम उठाना कितनी भूल की बात है। (विष्णोर्नुकं वीर्याणि) इस मन्त्र का बहुत सीधा अर्थ फिर भी दिखाते हैं कि अधिक कीर्ति वाले और तीन तरहसे चरणारविन्दों को धरने वाले जिस विष्णुने देवताओं के सहित ऊपर के सत्यलोक को थाम लिया उस विष्णु के पराक्रमोंका जो पुरुष पृथिवी के रजकी भी गिनती कर चुका है ऐसा बुद्धिमान् पुरुष कौनसा कह सकता है अर्थात् कोई भी पुरुष नहीं कह सकता है।

नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये। गायन् गुणान् दशशताननआदिदेवः शेषोऽधुनाऽपि समवस्यति नास्य पारम् ॥ ४१ ॥ तथैवोक्तं विष्णुपुराणे "ज्ञानशक्तिबलैश्वर्य्यवीर्यतेजांस्यशेषतः,भगवच्छब्दवाच्यानि विनाहेयैर्गुणादिभिः ॥ ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य वीर्य्यस्य यशसः श्रियः ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भगइतीङ्गना । समस्तकल्याणगुणात्मकोऽसौ तेजोबलैश्वर्य्यमहाववोधः स्ववीर्य्यशक्त्यादिगुणैकराशिः समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः" इत्यादिपूर्वोक्तश्रुतिस्मृतिपुराणवचनेभ्योयद्यपि श्रीभगवद्गुणानामनन्तत्वादसंख्यत्वाच्च ब्रह्मादिभि-

जन्मसहस्रैरपि इयत्तावच्छेदेन वर्णयितुमशक्यास्तथापि स्वबुद्धिशुध्यर्थं यावन्त उपलभ्यन्ते तावन्तएवलिख्यन्ते तथाहि वेदान्तरत्नमञ्जूषायां श्रीपुरुषोत्तमाचार्य्यपादै-र्विवृतास्तेएवादौ लिख्यन्ते ज्ञानंशक्तिबलैश्वर्य्य तेजोवीर्य्यसौशील्य वात्सल्यार्जवसौहार्दसर्व शरण्यत्व मैस्यकरुणास्थिरत्वधैर्य्यदयामाधुर्य्यमार्दवादयः ॥ तत्र ज्ञानं सर्वदेशकालवस्तुविषयकप्रत्यक्षानुभवरूपम् ॥ १ ॥ शक्तिश्च अघटघटनापटीयस्त्वरूपसामर्थ्यम् ॥ २ ॥ बलं विश्वधारणादिशक्तिः ॥ ३ ॥ ऐश्वर्य्यं नियमनशक्तिः ॥ ४ ॥ श्रमहेतोरपरिमितत्वेऽपि श्रम-शून्यत्वं तेजः ॥ ५ ॥ वीर्य्यं परैरनभिभूयमानत्वे सति पराभिभवनसामर्थ्यम् ॥ ६ ॥ एते भगवद्गुणा जग-त्सृष्ट्याद्युपकारकाः षट् भगवच्छब्दवाच्यपरब्रह्माश्रिताः। जात्यादिभिरत्यमनपेक्ष्यातिमन्दैरप्यमायया संश्लेषभा-क्त्वं सुशीलत्वम। यथा श्रीरामोजातिमुपेक्ष्य गुहमा-श्लिश्लेष अस्य जातिहीनादिजन्यभगवदनङ्गीकारता-भयनिवृत्तावुपयोगः ॥ ७ ॥ मनोवाक्कायैः समत्वमार्ज-वम् ॥ ८ ॥ आत्मशक्तिमातिक्रम्यपररक्षणाधमः सौहार्दम जगत्सृष्ट्यादि महत्कार्य्योद्युक्तोमद्रक्षणे कथमुद्युञ्ज्या-दित्यनुसंधानजन्यभयनिवृत्तावस्योपयोगः ॥९॥ ब्रह्मा-

दिस्थावरान्तैः साधारणोपायत्वम सर्वशरण्यत्वम सर्व-साधनादिहीनस्य मम कथमत्राधिकार इत्यनुसन्धान-जन्यभयनिवृत्तावस्योपयोगः ॥ १० ॥ तदेव सौम्य-शब्दाभिधेयम ॥ ११ ॥ परदोषक्षपणस्वभावः कारु-ण्यम निष्करुणैःश्वकीयमपि वस्तूपेक्ष्यते इत्यनुसन्धा-नजन्यभयनिवृत्तावस्योपयोगः ॥ १२ ॥ युद्धादावचलत्वं स्थिरत्वम ॥ १३ ॥ निर्हेतुकपरदुःखदुःखित्वेसति तन्निराचिकीर्षा दया ॥ १४ ॥ अमृतपानवत्स्वादुद-र्शित्वं माधुर्य्यम ॥ १५ ॥ आश्रितदुःखासहिष्णुत्वं मार्दवम ॥ १६ ॥ एते सौशील्यादयस्तु गुणा भगवदा-श्रयणे आश्रितरक्षणे चोपयोगिनइतिविवेकः । कल्या-णगुणाश्च जगज्जन्मादिकारणत्व ॥ १७ ॥ शास्त्रयोनित्व । १८ । मोक्षप्रदत्व । १९ । सर्वकर्मफलप्रदत्व । २० । विश्वाधारत्व । २१ । सर्वव्यापित्व । २२ । सर्वनिय-न्तृत्व । २३ । निरतिशयसूक्ष्मत्व । २४ । निरातिशय-महत्त्व । २५ । ईश्वरेश्वरत्व । २६ । सर्वानतिक्रमणीय-त्वादयोगुणाः ॥ २७ ॥

और भी कुछ विशेष सिद्धान्त ब्रह्माजी कहने लगे कि हे नारद ! मैं पुरुष भगवान् और उनकी माया के बलका अन्त नहीं जानता हूं। वैसेही पर तेरे बड़े भैया सनकादिक मुनीश्वर भी नहीं जानते हैं बहुत कहने से क्या प्रयोजन है हजार मुखवाले

आदिदेव शेष भगवान् दो हजार जीभों से आपके गुणों का गान करते हुए अनंतकाल भी भगवान् के गुणों के अन्त को नहीं प्राप्त हुए तो दूसरे अर्थात् हमारी अपेक्षा पीछे होनेवाले पुरुष कहां से श्रीभगवान् के गुणों के अन्त को प्राप्त हो सकते हैं ॥ तैसे ही श्रीविष्णु पुराण में कहा गया है कि हेय अर्थात् परित्याग करने योग्य गुणों के विना सम्पूर्ण ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य्य, वीर्य्य, तेज, ये छः गुण और गुणों के अभेद करिके श्रीभगवच्छब्द के वाच्य अर्थात् अर्थ है जैसे चोर में चोरी करना ही मुख्य गुण है लेकिन भले मनुष्य में चोरी करना दोष है इससे श्रीभगवान् के हेय अर्थात् त्याज्य गुण नहीं है। सम्पूर्ण, ऐश्वर्य्य, वीर्य्य, यश, ज्ञान और वैराग्य, इन ६ छै पदार्थों का नाम भग है ऐसी शास्त्र में इनका नाम प्रसिद्धि है। स्वरूपभूत सम्पूर्ण कल्याण गुण वाले, तेज, बल, ऐश्वर्य और बड़े ज्ञान से युक्त, अपने वीर्य शक्त्यादि गुणों की मुख्य राशि, सब शक्तियों से परिपूर्ण परमेश्वर नाम वाले यह श्री हरिही शास्त्र में प्रसिद्ध हैं। इत्यादि पहिले कहे हुए श्रुति सूत्र और पुराणों के वचनों से यद्यपि श्री भगवान् के गुण अनन्त और असंख्य अर्थात्, अनगिनती मालुम होते हैं। इसी से वे गुण ब्रह्मादि देवताओं करिके अनेक जन्मों से भी (इयत्ता वच्छेदेन) अर्थात् श्रीभगवान् के गुण इतने हैं इस तरह वर्णन करने के लिये अशक्य अर्थात् गिनने में नहीं आ सकते हैं तोभी अपनी बुद्धि की शुद्धि के लिये जितने गुण शास्त्रों में हमको मिलते हैं उतने ही गुण हम लिखते हैं इसी बात को हम स्पष्ट रीति से इस प्रकार दिखलाते हैं कि श्री वेदान्तरत्न मञ्जूषा में पूज्यपाद श्री पुरुषोत्तमाचार्यचरण करिके कितनेक गुण स्पष्ट कहे गये हैं इसी से पहिले वेही गुण लिखते हैं। सब देश और सब काल में होती हुई वस्तु के प्रत्यक्ष अनुभवको ज्ञान कहते हैं (१) अनहोनी को होना और होना को अनहोनी करने की चतुराई रूप सामर्थ्य को शक्ति कहते हैं (२) संसार को धारणादि शक्ति का नाम बल है (३) ब्रह्मादिस्तम्ब पर्यन्त जीवों को दबाते हुए अपने वश में रखने की शक्ति को ऐश्वर्य्य कहते हैं (४) श्रम (थकावट) के अनेक कारण आने पर भी और फिर अपने पास में थकावट न आने देने की सामर्थ्य को तेज कहते हैं। (५) दूसरे पुरुषों करिकें अपने अनादर

को प्राप्त नहीं होते हुए दूसरे पुरुषों के अनादर करने की सामर्थ्य को वीर्य कहते हैं (५ ६) श्रीभगवान् के गुण संसार की, उत्पत्ति, पालन और संहार में उपकारी होते हुए भगवच्छब्द के वाच्य (अर्थ) जो श्रीकृष्ण परब्रह्म उनमें रहते हैं। जाति और कुल के बड़प्पन की ओर ध्यान न देते हुए अत्यन्त तुच्छ पुरुषों के साथ भी निष्कपट भाव अङ्क से अङ्क मिलाकर मिलने के स्वभाव विशेष को सुशीलत्व कहते हैं जैसे श्रीरामचन्द्रजी ने गुह की जाति के ओर ध्यान न करते हुए ही गुह के साथ सुशीलत्व गुण के प्रभाव से ही आलिङ्गन किया श्रीभगवान् में जो सुशीलत्व गुण है उसका उपयोग (काम) उस भक्त की उस भय की निवृत्तिमें लगता है कि जो भक्त अपने को जाति और कुल से हीन जान उसके मन में ऐसी भय उत्पन्न होती है कि हाय हाय हमको श्रीभगवान् स्वीकार नहीं करेंगे। बस इसी भयको हटाने के लिये सुशीलत्व गुण को श्रीभगवान् धारण करते हैं (७) मन वाणी और शरीर से जीव-मात्र में बराबर दृष्टि रखने को आर्जव कहते हैं (८) अपनी शक्ति को भी उल्लङ्घन कर दूसरे पुरुष की रक्षा का जो उद्यम (उद्योग) बस इसीका नाम सौहार्द है संसार की सृष्टि, स्थिति और संहार रूप बड़े बड़े भारी कामों में लगे हुए श्रीभगवान् हमारी रक्षा में कैसे उद्योग करेंगे। बस ऐसे अनुसन्धान (चिन्ता) से उत्पन्न हुई भय के हटाने में इस सौहार्दरूप गुण का काम लगता है (९) ब्रह्मा से आदि लेकर वृक्षतक अर्थात् जीव मात्र की आपत्तियों के हटाने का एक मात्र साधारण उपाय श्रीभगवान् ही हैं इससे श्रीभगवान् में जो साधारणोपायत्व धर्म है बस उसी को सर्व शरण्यत्व गुण कहते हैं सब साधनादि उपायों से हम हीन हैं तो श्रीभगवान् से दुःख दूर होने की आशा में कैसे अधिकार हो सकता है बस इस चिन्ता से उत्पन्न हुई भक्त की भय की निवृत्ति में सर्व शरण्यत्व गुण का काम लगता है (१०) सर्व शरण्यत्व गुण को ही कहीं सौम्य गुण कहते हैं (११) दूसरे जीवों के दोषों के नाश करने वाले स्वभाव को कारुण्य गुण कहते हैं-संसार में प्रायः देखा गया है कि निर्दयी पुरुष अपनी भी वस्तु को छोड़ देते हैं इस प्रकार चिन्ता से उत्पन्न हुई भक्त की भय की निवृत्ति में

इसका रक्ष्य गुण का काम लगता है सारांश यह है कि श्रीभगवान् कारुण्य करुणा गुण से ही अपने अंश (शक्ति) जीव को कदापि नहीं छोड़ सकते हैं (१२) युद्धादिकों में शत्रुओं के सामने से नहीं हटना इसका नाम स्थिरत्व गुण है (१३) विना कारण के ही दूसरे पुरुषों के दुःखों को देख अपने आपही दुःखी होते हुए ही फिर दूसरे पुरुषों के दुःखों के हटाने की इच्छा विशेष का नाम, दया गुण है (१४) अमृत पीने से जैसे तृप्ति नहीं होती है तैसेही श्रीभगवान् के दर्शन में भक्त की तृप्ति जिस गुण से नहीं होती है उसीको माधुर्य गुण कहते हैं (१५) आश्रित भक्तों के दुःखों को सहन नहीं करना, बस इसी का नाम मार्दव गुण है (१६) ए पहिले कहे हुए श्रीभगवान् के सौशील्यादिक गुण भक्तों को भगवान् की शरण लेने में जैसें उपयोगी हैं वैसें ही आश्रित भक्तों की रक्षा करने में भी उपयोगी समझने चाहियें। श्रीभगवान् जिस गुण से जगत् की उत्पत्ति-स्थिति और संहार करते हैं उस गुण को जगज्जन्मादि कारणत्व कहते हैं (१७) शास्त्र नाम वेद-वेद के अनुकूल मनुस्मृत्यादि और पुराण जिस शक्ति से जिस ईश्वर में शास्त्रक अर्थात् ईश्वर के स्वरूप के जनाने वाले होते हैं उस शक्ति को शास्त्र योनित्व गुण कहते हैं (१८) श्रीभगवान् जिस शक्ति से भक्तों को मोक्ष देते हैं उस शक्ति को मोक्षप्रदत्व गुण कहते हैं (१९) जीवों को सब कर्मा के फल देने वाली शक्ति को सर्व कर्म फल प्रदत्व गुण कहते हैं (२०) जिस शक्ति से विश्व के आधार हैं उस शक्ति को विश्वाधारगुण कहते हैं। (२१) जिस धर्म से सर्व व्यापी (सब में रहने वाले) कहाते हैं उसको सर्वव्यापित्व गुण कहते हैं (२२) जिस धर्म से सबके नियन्ता अर्थात् सबको वश में रखने वाले कहाते हैं उसको सर्व नियन्तृत्व गुण कहते हैं (२३) जिस सामर्थ्य के द्वारा बहुत छोटे से भी छोटे हो जाते हैं उसको निरतिशय सूक्ष्मत्व गुण कहते हैं। (२४) जिस शक्ति से बड़े से भी बड़े हो जाते हैं उसको निरतिशय महत्त्व गुण कहते हैं। (२५) जिस शक्ति से ब्रह्मादि ईश्वरों के भी ईश्वर अर्थात् सर्वेश्वर कहाते हैं उस शक्ति को ईश्वरेश्वरत्व गुण कहते हैं (२६) जिस शक्ति के प्रभाव से ब्रह्मादि सब जीव मिल करभी जिन श्रीभगवान् का अति क्रमण, उल्लङ्घन नहीं

कर सकते उस शक्ति को सर्वानति क्रमणीयत्व गुण कहते हैं (२७) इत्यादि कल्याण गुण कहे जाते हैं॥

वात्सल्यं नाम स्वाश्रितदोषादर्शित्वम् ॥२८॥ "उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते त्वंह्यज्ञएवाश्रितदोषदर्शने" अस्यच स्वापराधानुसन्धानजनित भगवदीयदण्डनिवृत्तावुपयोगः ॥ २८॥ सौलभ्यं सुखेन प्राप्यत्वम् अस्य चानन्तशक्तिवैभवं भगवन्तं ब्रह्मादयोऽपि प्राप्तुमशक्यास्तर्हि मादृशानांकथं प्राप्स्यते इत्यनुसन्धानजन्यशङ्कानिवृत्तावुपयोगः ॥ २९ ॥ स्वामित्वम् । स्वेतरसमस्तवस्तुनि स्वकीयत्वाध्यवसायः॥ अस्यच स्वरक्षणविषयकशङ्काजन्यभयनिवृत्तावुपयोगः। स्वद्रव्यं निर्व्याजं स्वयमेव रक्षत्येवेति नैरन्तर्य्यानुसन्धानात् ॥ ३० ॥ कृतज्ञत्वमल्पकृतं बहुत्वेनाङ्गीकरणम् ॥ अल्पपत्रपुष्पादिसमर्पणेन कथंतुष्येत्तस्यानन्तकोटिब्रह्माण्डनायकत्वादित्याद्यनुसन्धान जन्य शोकनिवृत्तावस्योपयोगः॥ स्वल्पैरर्च्यः सतामिति वचनात् ॥ ३१ ॥ सत्यप्रतिज्ञत्वमसृषाभाषणम् "गी० अ० १८ मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे" तथा वाल्मीकीययुद्धकाण्डे श्रीरामेणोक्तम् "सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो

ददाम्येतव्रतं मम " इतिस्वोक्तं कुर्य्यान्नवेति संशय निवृत्त्याविश्वास वृद्धावुपयोगः ॥ तथैव श्रीवनपर्वाणि श्रीमुखोक्तिः द्रौपदीं प्रति " पतेद्द्यौ हिमवान् शीर्य्येत् पृथिवीशकलीभवेत् । शुष्येत्तोयनिधिः कृष्णे नमे मोघं वचोभवेत् ,, इत्यादिना वाल्मीकीयारण्यकाण्डे च श्रीरामः श्रीसीतां प्रति " अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम् नतु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्योविशेषतः ॥ तदवश्यं मया कार्य्यमृषीणां परिपालनम् ॥ अनुक्तेनापि वैदेहि प्रतिज्ञायाथ किंपुन " रिति ॥ ३२ ॥ औदार्यमात्मपर्यन्तदातृत्वम् ॥ "यश्चात्मदावलदा " इतिश्रुत्युक्तं यथार्थंनवेति संशयानिवृत्त्याऽऽत्मभावापत्तिमवश्यं करिष्यत्येवेति विश्वासदार्ढ्येऽस्योपयोगः ॥ ३३ ॥ एतेभगवन्महागुणाश्चात्मन्यासिभिः सदा सर्वत्र शौचादिनिरपेक्षमनुसन्धेयाः ॥ पूर्णत्वम् प्रत्युपकाराकाङ्क्षाराहित्यम् ॥ ३४ ॥

अपने आश्रित भक्तों के दोषों को नहीं देखना इसको वात्सल्य गुण कहते हैं (२८) इसी विषय में श्री महानुभावों का कथन है कि श्रीभगवान् वात्सल्य गुण के मारे किसी पुरुष करिकें कठोर से कठोर वचन द्वारा कहे जाने पर भी भला बुरा कुछ उत्तर भी नहीं देते हैं और भी कहा है कि आप अपने आश्रित भक्तों के दोषों के देखने में तो सर्वज्ञ होते हुए अज्ञ ही बन जाते हैं बस यही वात्सल्य

गुण का मुख्य काम है। और भी सुनिये, इस वात्सल्य गुण का काम अपने अपराधों की चिन्ता से उत्पन्न हुआ जो श्री भगवान् की ओर से दण्ड का भय उसके हटाने में लगता है॥ २८॥ सुख करिकें प्राप्यत्व का नाम सौलभ्यगुण है इस सौलभ्य गुण का काम, अनन्त शक्ति और अनन्त वैभव वाले श्रीभगवान् की प्राप्ति के लिये जब ब्रह्मादिक देवता भी असमर्थ हैं तो हमसरीके तुच्छ जीवों को कैसे प्राप्त होयंगे इस चिन्ता से उत्पन्न शङ्का की निवृत्ति में लगता है॥ २९॥ अपने से भिन्नसम्पूर्ण संसार भर में श्री भगवान् का यह विचार होना कि, यह संसार हमारा है बस इसी का नाम स्वामित्व गुण है इस स्वामित्व गुण का काम, श्रीभगवान् हमारी रक्षा करेंगे या नहीं इस शङ्का से उत्पन्न हुई भय की निवृत्ति में लगता है, भक्त इस गुण की ओर ध्यान देकर सदा चिन्तवन करता रहै कि श्री भगवान् अपने आप ही निष्कपट भाव से अपनी द्रव्य की अवश्य ही रक्षा करेंगे।॥ ३०॥ थोड़े पत्र पुष्पादिकों से किये हुये पूजन को भी बहुत किया ऐसा स्वीकार करना इस गुण का नाम कृतज्ञत्व है जब श्रीभगवान् अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड के नायक हैं तब थोड़े पत्र पुष्पादिकों के अर्पण से कैसे सन्तुष्ट होयंगे इस चिन्ता से उत्पन्न हुए शोक के हटाने में इस कृतज्ञत्व गुण का काम लगता है, महात्माओं करिकें थोड़े पत्र पुष्पादिकों से श्री भगवान् पूजनीय हैं ऐसा एक वचन भी है॥ ३१॥ सत्य भाषण ही को सत्यप्रतिज्ञत्व गुण कहते हैं श्रीमद्भगवद्गीता के १८ अठारहवें अध्याय के (मामेवैष्यसि) इत्यादि श्लोक से श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अर्जुन से कहा है कि तुम मेरे अत्यन्त प्यारे हो इसी से तुम्हारे लिये मैं सांची प्रतिज्ञा करता हूं कि तुम मेरे को ही प्राप्त होओगे॥ तैसे ही श्री वाल्मीकीय रामायण के युद्ध काण्ड में श्री रामचन्द्र जी ने कहा है कि एक वार ही हमारी शरण में प्राप्त और हे भगवन्! हम आपके हैं ऐसा याचना करते हुए भक्त के लिये सब प्राणियों से अभय देता हूं ऐसा मेरा व्रत नाम संकल्प है। श्रीभगवान् अपने कहे हुए वचन को पूरा करेंगे या नहीं इस संदेह को निवृत्ति करिकें विश्वास बढ़ाने में सत्यप्रतिज्ञत्व गुण का काम लगता है। तैसे ही श्रीमहाभारत के वनपर्व में श्री कृष्णचन्द्रजी ने द्रौपदी से कहा है कि

आकाश भलेही गिर जाय, हिमालय पर्वत नष्ट हो जाय, पृथ्वी खण्ड खण्ड हो जाय, और समुद्र भलेही सूख जाय लेकिन हे द्रौपदीजू मेरा वचन कभी भी व्यर्थ नहीं होगा, इत्यादि। और वाल्मीकीय रामायण के आरण्य काण्ड में श्रीरामचन्द्रजी ने श्रीसीताजी से कहा है कि हे सीते मैं अपने जीवन को भी छोड़ सकता हूं, कहां तक कहूं लक्ष्मण सहित तुमको भी छोड़ सकता हूं, लेकिन हम विशेष करिकें ब्राह्मणों से राक्षसों के मारने की प्रतिज्ञा कर फिर उस प्रतिज्ञाको हम नहीं छोड़ सकते हैं इससे हे (वैदेहि) विना कहे हुए ही हमको ऋषीनकी रक्षा करनी चाहिये पहिले प्रतिज्ञा करिकें पीछे ब्राह्मणों की रक्षा करनी इसमें तो फिर कहनाही क्याहै ? (३२) आपे तक दैदेना बस इसी का नाम औदार्य गुण है। जितने श्रीभगवद्विग्रह हैं वे सबही विग्रह आपे और बल के देने वाले हैं इस श्रुति की बात ठीक है या नहीं इस संदेह की निवृत्ति करिकें आपे को अवश्यही देंगे इस प्रकार विश्वास की दृढ़ता में इस औदार्य गुण का काम लगता है (३३) ए सब श्रीभगवान् के महा गुण अहंता के आस्पद, देहादि और ममता के आस्पद स्त्री पुत्रादि जिन्होंने श्रीभगवान् के समर्पण कर दिये हैं उन भक्तों करिकें सदा और सब जगह शौचादिक के विनाही चिन्तवन करने योग्य हैं अपनी ओर से उपकार होने परभी दूसरे से प्रत्युपकार (बदला) की इच्छा नहीं करना, बस इसी का नाम पूर्णत्व गुण है (३४)

अथ भा० प्र० १ अ० ॥ १६ ॥ अष्टाविंशातिं श्लोकमारभ्य त्रिंशच्छ्लोक पर्यन्तं धर्मं प्रति पृथिव्या उक्तायें गुणास्तेषां विवरणं प्रीतिसंदर्भे श्री जीव गोस्वामिभिः कृतं तदुक्तरीत्यैवात्राऽन्ये भगवद्गुणा लिख्यन्ते ॥ सत्यं यथार्थभाषणम् ॥ अयं गुणः पूर्वमुक्तः

इसके पीछे श्रीमद्भागवत (स्कं० १६ वें अध्याय के २८ वें श्लोक से लेकर ३० वें श्लोक तक पृथिवी ने धर्म से जो गुण

कहे हैं उन गुणों का विवरण (व्याख्यान) प्रीति संदर्भ में श्री जीव गोस्वामीजी ने किया है उनकी कही हुई रीति के अनुसार ही यहाँ पर और श्रीभगवान् के गुण लिखते हैं यथार्थ भाषण को ही सत्य कहते हैं यह गुण पहिले कहा है ॥ (३५)

शौचं शुद्धत्वम् ॥ ३६ ॥ दयापूर्वमुक्ता । अनेन शरणागतपालकत्वम् ३७ भक्तसुहृत्त्वञ्च ३८ क्षान्तिः क्रोधापचौ चित्तसंयमः ३९ त्यागोवदान्यता ४० सन्तोषस्त्वतस्तृप्तिः ४१ आर्जवमवक्रता अयमपिपूर्वमुक्तः । सर्वशुभङ्करत्वम् ४२ शमोमनोनैश्चल्यम् ४३ सुदृढव्रतत्वम् ४४ दमोबाह्येन्द्रियनैश्चल्यम् ४५ तपः क्षात्रियत्वादिर्लीलावतारानुरूपः स्वधर्मः ४६ साम्यं शत्रुमित्रादिवुद्ध्यभावः ४७ तितिक्षा स्वस्मिन् परापराधसहनम् ४८ उपरतिर्धनादिलाभे औदासीन्यम् ४९ श्रुतं शास्त्र विचारः ५० ज्ञानं पञ्चविधम् । वुद्धिमत्त्वम् ५१ कृतज्ञत्वम् ५२ देशकालपात्रज्ञत्वम् ५३ सर्वज्ञत्वम् ५४ आत्मज्ञत्वम् ५५ विरतिरसद्विषयैवतृष्ण्यम् ५६ ऐश्वर्य्यं नियन्तृत्वम् अयमपिपूर्वमुक्तः । शौर्य्यं संग्रामोत्साहः ५७ तेजः प्रभावः अयमपिपूर्वमुक्तः । प्रतापः प्रभावविख्यातिः ५८ वलं दक्षत्वम तच्च दुष्करक्षिप्रकारित्वम् ५९ धृतिः क्षोभकारणे प्राप्ते अव्याकुलत्वम् ६० स्मृतिः कर्त्तव्यार्थानुसन्धानम् । ६१ स्वातन्त्र्यमपराधीनता ६२

कौशलं त्रिविधम् क्रियानिपुणता ६३ युगपद्भूरिस-
माधानकारिता लक्षणाचातुरी । ६४ कलाविलासवि-
द्धचालक्षणावैदग्धीच ६५ कान्तिः कमनीयता एषा
चतुर्विधा । अवयवस्य हस्ताद्यङ्गादिलक्षणस्य कमनी-
यता ६६ वर्णरसगन्धस्पर्शरसशब्दानां कमनीयता
तत्ररसश्चाधरचरणस्पृष्टवस्तुनिष्ठोज्ञेयः ६७ वयसश्च
कमनीयता ६८ नारीगणमनोहारित्वम् ६६ धैर्यमव्या-
कुलता अयमपिपूर्वमुक्तः ॥ मार्दवं प्रेमार्द्रचित्तत्वम्
अयमपिपूर्वमुक्तः ॥ प्रेमवश्यवत्वम् ७० प्रागल्भ्यं
प्रतिभातिशयः ७१ वावदूकत्वम् ७२प्रश्रयोविनयः ७३
ह्रीमत्त्वम् ७४ यथायुक्तसर्वमानदातृत्वम् ७५ प्रिय-
म्वदत्वम् ७६ शीलं सुस्वभावः अयमपि पूर्वमुक्तः ।
साधुसमाश्रयत्वम् ७७ सहोमनः पाटवम् । ७८
ओजोज्ञानेन्द्रियपाटवम् ७६ बलं कर्मेन्द्रिय पाटवम्
८० भगस्त्रिविधः भोगास्पदत्वम् ८२ सुखित्वम् ८२
सर्वसमृद्धिमत्त्वम् ८३ गाम्भीर्य्यं दुर्बोधाशयत्वम् ८४
स्थैर्यमचञ्चलता ८५ आस्तिक्यं शास्त्रचक्षुष्ट्वम् ८६
कीर्त्तिस्साद्गुण्यख्यातिः ८७ रक्तलोकत्वम् ८८ मानः
पूज्यत्वम् ८६ अनहङ्कृतिर्गर्वरहितत्वम् ६० चकारात्-
ब्रह्मण्यत्वम् ६१ सर्वसिद्धिनिषेवितत्वम् ६२ सच्चि-

दानन्दघनविग्रहत्वस्त्वादयोज्ञेयाः ६३ महत्त्वमिच्छाद्भिः प्रार्थ्या इतिमहागुणाइति वरीयस्त्वमपि गुणान्तरम् ॥ ६४ ॥

शील को ही सुशीलत्व कहते हैं (३६) दयागुण पहिले कहा है इसी से शरणागत पालकत्व भी गुण सिद्ध हुआ (३७) भक्तों के सुहृद होने से ही श्रीभगवान् में भक्त सुहृदत्व गुण है (३८) क्रोध के आने पर चित्त के संयम अर्थात् रोकने का नाम क्षान्ति गुण है (३९) त्याग का नाम वदान्यता गुण है (४०) अपने आपही तृप्त रहना इसका नाम संतोष गुण है (४१) सरलता (सीधेपन) का नाम आर्जव गुण है यह गुण भी पहिले कहा है। प्राणी मात्र का शुभ (कल्याण) करते हैं इससे श्रीभगवान् में सर्व शुभङ्करत्व गुण है (४२) मन को निश्चल रखने का नाम शम गुण है (४३) टारेसी न टरे ऐसे संकल्प वाले होने से श्रीभगवान् में सुदृढ़ व्रतत्व गुण है (४४) बाहिर की चक्षुरिन्द्रियादिकन कूं विषयों से रोकने का नाम दम गुण है (४५) क्षत्रियत्व से आदि लेकर जो लीलावतार उनके योग्य जो अपना धर्म उसका नाम तप है (४६) सब किसी में शत्रु मित्र और उदासीन बुद्धि न करना इसका नाम समता गुण है (४७) अपने में जो दूसरों के अपराधों की सहनशक्ति है उसी का नाम तितिक्षा गुण है (४८) धनादिककी प्राप्ति में जो उदासीनता अर्थात् चित्त न देना इसका नाम उपरति गुण है (४९) शास्त्रों के विचार को श्रुतगुण कहते हैं (५०) पांच प्रकार का ज्ञान गुण है, बुद्धि वाले होने से श्री भगवान् में बुद्धिमत्त्व गुण है (५१) किये हुए उपकार के ज्ञाता होने से कृतज्ञत्व गुण है (५२) उत्तम देश, काल, और पात्र के ज्ञाता होने से देशकालपात्रज्ञत्वगुण है (५३) सबके ज्ञाता होने से सर्वज्ञत्व गुण है (५४) अपने स्वरूप के ज्ञाता होने से आत्मज्ञत्व गुण है (५५) बुरे विषयों की तृष्णा न करना इसका नाम विरति गुण है (५६) सबको अपने वशमें रखने से ऐश्वर्य गुण है यह भी पहिले कहा है संग्राम में जो उत्साह उसका नाम शौर्य गुण है (५७) प्रभाव का नाम तेज है यह भी पहिले कहा है

प्रभाव की प्रसिद्धि का नाम प्रताप है (५८) दबपने का नाम बल है कठिन से कठिन काम को बहुत जल्दी करिकें दिखाय देना, यही बल का स्वरूप है (५९) मनके डिगाने के कारण आने पर भी नहीं घबड़ाना यह धृति गुण का काम है (६०) करने योग्य अर्थों के अनुसन्धान, चिन्तवन को स्मृति कहते हैं (३१) दूसरों के अधीन नहीं रहना इसका नाम स्वातन्त्र्य गुण है (६२) श्रीभगवान् बड़े कुशल हैं इससे कौशल गुण है वह कौशल गुण तीन प्रकार का है पहिला क्रियाओं में चतुराई (६३) दूसरा एक समय में अनेक प्रश्नों के समाधान करने की चातुरी (६४) तीसरा ६४ चौंसटकलाओं की शोभा दिखाने वाली पाण्डित्य भरी हुई चातुरी (६५) कमनीयता सुन्दरताई का नाम कान्ति गुण है यह चार प्रकार की है एक हस्त पादादि अङ्गों की कमनीयता, सुन्दरताई (६६) दूसरी वर्ण, दिव्य ६ छै प्रकार का रस, गन्ध, स्पर्श, शृङ्गार रस और शब्द की सुन्दरताई, इन्हों के बीच में जो दिव्य शृङ्गाररस है वह तो अधरामृत और चरणामृत में रहने वाला ही जानना चाहिये (६७) तीसरी, अवस्था की सुन्दरताई (६८) चौथी सुन्दरताई वह है कि जिसके द्वारा नारीगण के मनको हरण करते हैं (६९) कभी किसी काम में घबड़ाहट को न आने देना बस इसका नाम धैर्य गुण है, यह भी पहिले कहा है। जिस शक्ति के द्वारा प्रेम के मारे चित्त पिघल जाता है उसका नाम मार्दव गुण है यह भी पहिले कहा है। प्रेम के वशमें हो जाने से श्रीभगवान् में एक प्रेम वश्यत्व भी गुण है (७०) अधिकता के साथ बुद्धि में नई नई वस्तुओं की स्फूर्ति होना ही प्रागल्भ्य गुण का लक्षण है (७१) अतिशय करिकें बहुत बोलने वाले होने से वाग्मित्व गुण है (७२) विनय का नाम प्रश्रय गुणहै (७३) लज्जा वाले होने से ह्रीमत्व गुण है (७४) यथायोग्य सबों के मान के दाता होने से, यथायुक्त सर्वमानदातृत्व गुण है (७५) सबों से प्रिय वचन कहते हैं इससे प्रियम्वदत्व गुण है (७६) सुन्दर स्वभाव का नाम शील गुण है यह भी पहिले कहा है। साधुओं के अच्छी तरह आश्रय होने से साधु समाश्रयत्व भी गुण है (७७) मन की सामर्थ्य का नाम साहस गुण है (७८) ज्ञानेन्द्रियों की सामर्थ्य का नाम ओज है (७९) कर्मेन्द्रियों की

सामर्थ्य का नाम बल है (८०) भगनाम का गुण तीन प्रकार का है। पहिला, दिव्य अनेक प्रकार के भोगों के आस्पद-स्थान अर्थात् भोगने वाले होने से भोगास्पदत्व गुण है (८१) श्रीभगवान् सदैव सुखी रहते हैं इससे सुखित्व गुण है (८२) सम्पूर्ण बढ़िया से बढ़िया आदि विद्यमान होने से सर्व समृद्धिमत्त्व गुण है (८३) दुर्बोध अर्थात् अथाह अन्तःकरण वाले होने से गाम्भीर्य गुण है (८४) जिस धर्म से मन में चञ्चलता न आवे उसका नाम स्थैर्य गुण है (८५) शास्त्र रूपी नेत्र से न्यायादि कार्य करते हैं इससे शास्त्रचक्षुष्ट्व गुण है [८६] उत्तम गुणों की प्रसिद्धि होना इसका नाम कीर्ति गुण है (८७) श्रीभगवान् में प्राणीमात्र का अनुराग होने से रक्तलोकत्व गुण है (८८) पूज्यपने का ही नाम मानगुण है [८९] जगत के सृष्ट्यादि कार्य करने परभी घमण्ड न करना बस यही अगर्वकृति गुण का स्वरूप है (९०) श्रीभगवान् ब्राह्मणों के मानने वाले हैं सो चकार से ब्रह्मण्यत्व गुण भी समझना चाहिये (९१) सम्पूर्ण सिद्धियाँ हाथ जोड़े हुए सेवा में लगी रहती हैं इसी से सर्व सिद्धि निषेवितत्व गुण है (९२) सत्, चित् आनन्दघन विग्रह और स्वरूप वाले होने से सच्चिदानन्दघन विग्रह वत्त्वादि गुण जानने चाहियें (९३) बड़प्पन की इच्छा करनेवाले पुरुषों करिकें श्रीभगवान् के महागुण सदा प्रार्थनीय है श्रीभगवान् सबसे श्रेष्ठ हैं इससे वरीयस्त्व गुण भी है (९४)

अथ श्रीभक्तिरसामृतसिन्धौ श्रीरूपगोस्वामिभिर्ये चतुःषष्टिसंख्याका भगवद्गुणा उक्तास्तेलिख्यन्ते अयं नेता सुरम्याङ्गः सर्वसल्लक्षणान्वितः ॥ रुचिरस्तेजसा-युक्तोबलीयान् वयसान्वितः ॥ १ ॥ विविधाद्भुत भाषावित् सत्यवाक्यः प्रियम्वदः ॥ वावदूकः सुपाण्डित्योबुद्धिमान् प्रतिभान्वितः । २ । विदग्धश्चतुरोदक्षः

कृतज्ञः सुदृढव्रतः ॥ देशकालसुपात्रज्ञः शास्त्रचक्षुः
शुचिर्वशी । ३ । स्थिरोदान्तः क्षमाशीलो गम्भीरो
धृतिमान् समः ॥ वदान्योधार्मिकः शूरः करुणोमान्य
मानकृत् । ४ । दक्षिणो विनयी ह्रीमान् शरणागत
पालकः ॥ सुखी भक्तसुहृत् प्रेमवश्यः सर्वशुभङ्करः ५
प्रतापी कीर्त्तिमान् रक्तलोकः साधुसमाश्रयः ॥ नारी-
गणमनोहारी सर्वाराध्यः समृद्धिमान् । ६ । वरीयान्
ईश्वरश्चेति गुणास्तस्यानुकीर्त्तिताः ॥ समुद्राइव पञ्चा-
शद् दुर्विगाह्यहरेरमी । ७ । जीवेष्वेते वसन्तोऽपि
विन्दुविन्दुतया क्वचित परिपूर्णतया भान्ति तत्रैव पुरुषो
त्तमे । ८ । अथ पञ्चगुणायेस्युरंशेन गिरिशादिषु ॥ सदा-
स्वरूपसंप्राप्तः सर्वज्ञो नित्यनूतनः । ९ । सच्चिदानन्द
सान्द्राङ्गः सर्वसिद्धिनिषेवितः । १० । अथोच्यन्ते गु-
णाः पञ्च येलक्ष्मीशादिवर्त्तिनः । अविचिन्त्यमहाशक्तिः
कोटिब्रह्माण्डविग्रहः । ११ । अवतारावलीबीजं हता-
रिगतिदायकः ॥ आत्मारामगणाकर्षीत्यमीकृष्णे कि-
लाद्भुताः । १२ । सर्वाद्भुत चमत्कारलीलाकल्लोल
वारिधिः ॥ अतुल्यमधुरप्रेममण्डितप्रियमण्डलः । १३ ।
त्रिजगन्मानसाकर्षिमुरलीकलकूजितः ॥ असमानो
र्द्धरूप श्रीविस्मापितचराचरः ॥ १४ ॥ लीलाप्रेम्णा

प्रियाधिक्यं माधुर्य्ये वेणुरूपयोः इत्यसाधारणं प्रोक्तं गोविन्दस्य चतुष्टयम् ॥ एवं गुणाश्चतुर्भेदाश्चतुःषष्टि-रुदाहृताः ॥ २५ ॥

इसके अनन्तर श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु में श्रीरूप गोस्वामीजी ने ६४ चौंसठ गुण कहे हैं उन गुणों को यहां लिखते हैं ॥ विशेष और सुनिये, व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र नायकों के शिरोमणि हैं ऐसेही श्रीराधा ठकुरानीजू नायिकाओं की शिरोमणि हैं ॥ तथाहि—

नायकानांशिरोरत्नं कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्
यत्र नित्यतया सर्वे विराजन्ते महागुणाः ॥

तैसे ही कहा है कि नायकों के शिरोमणि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं जिनमें सम्पूर्ण महागुण नित्य ही विराजते हैं श्रीकृष्ण चन्द्रजी में अनन्त गुण हैं लेकिन चौंसठ गुण प्रधान हैं, उन गुणों को [अथनेता] इत्यादि श्लोकों से निरूपण करते हैं यह श्रीकृष्ण नामवाले नेता अर्थात् नायक अत्यन्त मनोहर अङ्गवाले हैं इससे सुरूपाङ्गत्व गुण है (१) सम्पूर्ण उत्तम लक्षणों से युक्त होने से सर्व सल्लक्षणान्वितत्व गुण है (२) सुन्दर होने से रुचिरत्व गुण है (३) तेज से युक्त होने से तेजोयुक्तत्व गुण है (४) अतिशय करिकें बली होने से बलीयस्त्व गुण है (५) नित्य किशोर अवस्था से युक्त हैं इसीसे वयोऽन्वितत्व गुण है (६) अनेक प्रकारकी अनो खी अनोखी भाषाओं के जाननेसे विविधाद्भुत भाषावित्त्व गुण है (७) सत्य वाक्य बोलने से, सत्यवाक्यत्व गुण है (८) प्यारे वचन बोलने से प्रियम्वदत्व गुण है (९) अतिशय करिकें चतुराई के साथ बोलते हैं इससे वावदूकत्व गुण है (१०) अच्छी पण्डिताई से सुपाण्डित्यत्व गुण है (११) बुद्धिमान् होने से बुद्धिमत्त्व गुण है (१२) अतिशय करिकें नई नई वस्तुओं की स्फूर्त्ति करानेवाली बुद्धियें युक्त हैं इससे प्रतिभान्वितत्व गुण है (१३) विशेष चतुराई वाले होने से विदग्ध हैं इससे विदग्धत्व गुण है (१४) सामान्य चतुराई वाले होने से चतुर हैं इससे चतुरत्व गुण है (१५) सब से उत्तम चतुराई के विद्यमान होने से दक्ष हैं अतएव दक्षत्व गुण है

(१६) ऐसे ही कृतज्ञत्व गुण है (१७) सुदृढ़ व्रतत्व० (१८) देश काल, सुपात्रज्ञत्व (१९) शास्त्रचक्षुष्त्व [२०) शुचित्व (२१) वशित्व (२२) स्थिरत्व (२३) दान्तत्व (२४) क्षमा युक्त शील होने से क्षमाशील हैं इसीसे क्षमाशीलत्व गुण है (२५) गम्भीरत्व (२६) धृतिमत्त्व(२७) समत्व (२८) दान में शूर होने से वदान्य हैं अतएव वदान्यत्व (२९) धार्मिकत्व (३०) शूरत्व (३१) करुणत्व (३२) मान्य मानकृत्व (३३) दक्षिणत्व (३४) विनयित्व (३५) ह्रीमत्त्व (३६) शरणागतपालकत्व (३७) सुखित्व (३८) भक्त सुहृत्व (३९) प्रेम वश्यत्व (४०) सर्व शुभंकरत्व (४१) प्रतापित्व (४२) कीर्तिमत्त्व (४३) रक्त लोकत्व (४४) साधु समाश्रयत्व (४५) नारीगण मनोहारित्व (४६) सर्वाराध्यत्व (४७) समृद्धिमत्त्व (४८) वरीयस्त्व (४९) ईश्वरत्व (५०) इस प्रकार समुद्रों की तरह दुर्विगाह अर्थात् अथाह तिन हरि के ये ५० पचाश गुण यहां पर कहे हैं कहीं कहीं सामान्य रूप से जीवों में भी ये गुण रहते हैं लेकिन परिपूर्ण रूप से तो उसी पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण चन्द्र में सुशोभित होते हैं इसके अनन्तर यथा संभव अपने अपने अंश करिके जो जो गुण सदा शिवादिकों में रहते हैं उन गुणों को लिखते हैं सदा स्वरूप में लगे रहते हैं इस से सदास्वरूप संप्राप्तत्व गुण है (५१) सब के ज्ञाता हैं अतएव सर्वज्ञत्व गुण है (५२) नित्य नवीन ही रहते हैं इस से नित्यनूतनत्व गुण है (५३) श्रीभगवान् का अङ्ग अर्थात् शरीर सत्-चित् आनन्दरूप और तैसे ही सान्द्रनामे घन है इसीसे सच्चिदानन्द सान्द्राङ्गत्व गुण है ॥ ५४ ॥ अब हम सब साधारण पुरुषों के जानने योग्य घन पद का अर्थ लिखते हैं जिस वस्तु में दूसरी वस्तु का प्रवेश न हो सकै उस वस्तु को घन कहते हैं ॥ क्योंकि ग्रन्थकारों ने दोनों पक्षों में इस पद का विग्रह इस तरह किया है कि

सच्चिदानन्द रूपंच तत् तथा सान्द्रवस्त्वन्तरा प्रवेश्य चाङ्गंयस्य स इति श्रीभगवत्पक्षे । सच्चिदानन्देन श्रीभगवता सान्द्रं तादात्म्यं प्राप्तमङ्गं यस्यसइतिविग्रहः शिवपक्षे

श्रीशिवजी का अङ्ग, सच्चिदानन्द श्रीभगवान करिकै सान्द्र नाम तादात्म्य को प्राप्त है ॥

सब सिद्धियाँ हाथ जोड़े हुए सेवा मैं लगीं रहती हैं इस से सर्वसिद्धि निषेवितत्व गुण है (५५) अब परम व्योम के स्वामी नारायण और महा पुरुषादिकों मैं रहनेवाले पांचों गुणों को कहते हैं श्रीनारायण मैं अविचिन्त्य महाशक्तित्व गुण है (५६)

श्रीमहापुरुष का अङ्ग अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों मैं व्यापक है इससे कोटि ब्रह्माण्डविग्रहत्व गुण है [५७] अवतारों के समूह के बीज नाम कारण होनों हैं इससे अवतारावली बीजत्व गुण है [५८] मरे हुए शत्रुओं को गति के दाता होने से हतारिगतिदायकत्वगुण है [५९] श्रीमद्विकुण्ठाच्युतादिकों मैं भी आत्माराम गण कर्षित्व गुण प्रसिद्ध है [६०] मोक्ष और भक्ति पर्य्यन्त गति के देने वाले श्रीकृष्णचन्द्र मैं तो ये गुण अद्भुत ही हैं। सम्पूर्ण अनोखी चमत्कार से भरी हुई लीला रूपी तरङ्गों के तो, मानों समुद्र ही हैं इससे सर्वाद्भुत चमत्कारि लीला कल्लोल वारिधित्व गुण है [६१] अतुल्य माधुर्य रस से भरे हुए प्रेम से प्रियाओं के मण्डल को भूषित करते हैं अतएव अतुल्यमधुरप्रेममण्डितप्रियमण्डलत्व गुण है (६२) माधुर्यरस से भरी हुई वंशी के शब्द द्वारा तीनों लोकों के मन को खैंच लेते हैं इससे त्रिजगन्मानसाकर्षि मुरली कलकूजितत्व गुण है (६३) असमान माधुर्य रस से भरे हुए रूप की शोभा से चराचर जगत् को आश्चर्य रूपी समुद्र मैं डुबादेते हैं इससे असमानोर्द्ध्व रूपश्रीविस्मापितचराचरत्व गुण है (६४) उ गुणों को संक्षेपसे लिखते हैं लीला और प्रेम करिकैं अपने से भी अधिक श्रीप्रियाजी को मानना। ए दो गुण हुए। तीसरा वेणुका माधुर्य और चौथा रूप का माधुर्य, इस प्रकार गोविन्दके असाधारण ४ चार गुण कहे हैं ५७। ५९। ६०। ६४ ऐसे चार भेदवाले ६४ चौसठ गुण कहे हैं ॥

अन्ये चाष्टौ भगवद्गुणाउपनिषदि दृष्टास्तेचोच्यन्ते अयमात्मापहतपाप्मविजरोविमृत्युर्विशोकोविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः ,, इति एषां भगवद्गुणानामहर्निशं स्मरणं कार्य्यमिति भा० स्कं० १० अ० १ उक्तम् " निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् । कउत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान्विरज्येतविनापशुघ्नात् ॥ अन्यत्राप्युक्तम् "हरेर्गुणानुवादः खलुसत्त्वभावनः" इत्यादि बहुभिर्वचनैर्भगवद्गुणानां स्मरणं प्रतिदिनं कर्त्तव्यमित्यलं विस्तरेण श्रीवृन्दावनवास्तव्य श्रीहरिप्रियाशरणोपनामक पं० दुलारेप्रसादशास्त्रिणा संगृहीता श्रीभगवद्गुणचंन्द्रिका समाप्ता ॥

और आठ श्रीभगवान् के गुण छान्दोग्योपनिषद् में आठवें अध्याय के प्रथमखण्ड एवं ५ वें दण्डक में देखे हैं अतएव उनको यहां कहते हैं। पाप परमात्मा के पास नहीं झांकते हैं इसीसे अपहतपाप्मत्व गुण है (१) वृद्धावस्था पास नहीं आतीहै इससे विजरत्वगुण है (२) मृत्युरहित होने से विमृत्युत्वगुण है (३) शोकके न होने से विशोकत्व गुण है (४) ईश्वर को भोजन की इच्छा नहीं होती है इससे विजिघत्सत्व गुण है (५) जल पीने की इच्छा नहीं होती है इससे अपिपासत्व गुण है (६) साँची इच्छा वाले होने से सत्यकामत्व गुण (७) और साँचे संकल्प वाले होने से सत्य संकल्पत्व गुण है अपहतपाप्मत्वादि ८ गुण मुक्त जीवों में भी रहते हैं (८) इन श्रीभगवान् के गुणों का दिन रात स्मरण करना चाहिये

यह बात, श्रीमद्भागवत १० स्कन्ध में १ अ० के "निवृत्ततर्षैरित्यादि श्लोक से स्पष्ट आती है श्रीमद्भागवत ११ स्कन्ध, २० अ० के-

(नृदेह माद्यं सुलभं सुदुर्लभम्)

इत्यादि १७ वें श्लोक में कहे हुए आत्मे घाती पुरुष के सिवाय कोई ऐसा पुरुष नहीं है कि जो अनेक प्रकार की तृष्णाओं से छूटे हुए मुक्त श्रीनारद सरीके देवर्षियों करिकें अधिक गाये गये एवं संसार रूपी रोग से छूटने की इच्छा करने वाले मुमुक्षु जनों के लिये औषधि की तरह हटाने वाले और विषयी पुरुषों के कर्णेन्द्रिय और मन को आनन्ददायी-उत्तम श्लोक —श्रीभगवान् के गुणों के अनुवादों से विरक्त होजाय अर्थात् न सुने॥ और जगह भी कहा है कि श्रीहरिभगवान् के गुणानुवाद निश्चय ही अन्तःकरण के शोधक हैं— इत्यादि अनेक वचनों द्वारा श्रीभगवान् के गुणों का स्मरण प्रतिदिन करना चाहिये, यही स्पष्ट आता है, बस होगया! अब बहुत विस्तार करने से क्या प्रयोजन है? शुभंभूयात्

श्रीवृन्दावन निवासी—श्रीहरिप्रियाशरणोपनामक पण्डित दुलारे प्रसाद शास्त्री करिकें संगृहीत श्रीभगवद्गुण चन्द्रिका समाप्त हुई

श्रीवृन्दावननिवासी श्रीनिम्बार्कपाठशालाध्यक्ष पं० रामप्रसाद शर्मा की बनाई हुई श्रीभगवद्गुणचन्द्रिका की भाषाटीका समाप्त हुई।
ज्येष्ठ कृष्णपक्ष ११ बुधवार सं० १९८८॥

॥ श्रीनिकुञ्जविहारिणेनमः ॥

श्रीराधाकृष्णकरचरणाब्जचिन्ह-

प्रकाशिका

ध्यानार्थं हस्तपादानां चिन्हानि स्वेष्टदेवयोः ।
श्रीराधाकृष्णयोर्वक्ष्ये नत्वा तच्चरणाम्बुजम् ॥

अथ भक्तानां ध्यानार्थं श्रीराधाकृष्णकरचरणाब्ज चिन्हानि मात्स्यगारुडाद्यनुसारेण सगृह्यन्ते । तत्र श्रीराधावामचरणस्य-अंगुष्ठमूले यवः, तत्तले चक्रम्, तत्तले छत्रम्, तत्तले वलयम्, तर्जन्यङ्गुष्ठसन्धि मारभ्य वक्रगत्या यावदर्धचरणमूर्ध्वरेखा, मध्यमातले कमलम्, कमलतलेध्वजः सपताकः, कनिष्ठातलेऽङ्कुशः पार्ष्णावर्धचन्द्रः, तदुपरि वल्ली, पुष्पंच । इत्येकादश । अथ दक्षिणस्य-अंगुष्ठमूले शङ्खः, कनिष्ठातले वे-दिस्तत्तले कुण्डलम्, तर्जनीमध्यमयोस्तले पर्वतः, पार्ष्णौ मत्स्यः, मत्स्योपरि रथः, रथस्य पार्श्वद्वये शक्ति-गदे, इत्यष्टौ । मिलित्वा ऊनविंशतिः । अथ श्री-राधिकाया वामकरस्य-यथा-तर्जनीमध्यमयोः संधि

मारभ्य कनिष्ठाधस्तले करभभागे गतापरमायूरेखा, तत्तले करभमारभ्य तर्जन्यङ्गुष्ठ योर्मध्यभागं गंतान्या अंगुष्ठाधो मणिबन्धत उत्थिता वक्रगत्वा मध्यरेखां मिलित्वा तर्जन्यङ्गुष्ठयोर्मध्यभागं गतान्या, तथान्या युक्त्या विभज्य दर्श्यन्ते, अङ्गुलीनामग्रतोनन्द्यावताः पञ्च, अनामिकातले कुञ्जरः, परमायूरेखातले वाजी मध्यरेखातले वृषः, कनिष्टातलेऽङ्कुशः, व्यजनश्रीवृक्ष यूपबाणतोमरमाला यथाशोभमित्यष्टादश। अथ दक्षिणकरस्य—पूर्वोक्तपरमायूरेखादित्रयमत्रापि ज्ञेयम्, अङ्गुलीनामग्रतः शङ्खाः पञ्च, तर्जनीतले चामरम्, अत्रापि कनिष्ठातलेऽङ्कुशः, प्रासाददुन्दुभिवज्रशकट युगकोदण्डासिभृङ्गारा यथाशोभंज्ञेयाः। इति सप्तदश मिलित्वा पञ्चविंशत् ॥

श्री राधाकृष्ण के हस्त कमल एवं चरणारविन्दों के शुभप्रद चिन्हों की प्रकाशिका का प्रारम्भ करते हैं।

हम भक्तों को ध्यान करने के लिये श्रीराधाकृष्णके चरणारविन्दों को दण्डवत् प्रणाम करिके परम प्रेमास्पद अपने इष्ट देव श्रीराधा कृष्णदेव जू के हस्त कमल और चरणारविन्दों के परम कल्याणकारी चिन्हों को कहते हैं-

इसके पीछे प्रथम भक्तों को ध्यान करने के लिये श्रीराधाकृष्ण जू के हस्तकमल एवं चरणारविन्द के चिन्ह-मात्स्य गारुडादि पुराणों के अनुसार संगृहीत किये जाते हैं- उसमें से प्रथम श्रीराधिका जू के बांए चरण के चिन्हों को लिखते हैं॥ अंगूठा के मूल में जौ

का चिन्ह (१) जौ के नीचे चक्र (२) चक्र के नीचे छत्र-छाता (३) छत्र के तल में कङ्कण है (४) तर्जनी और अंगूठा के बीच से लेकर टेढ़ी चाल से आधे चरण तक एक ऊर्द्ध रेखा विराजमान है (५) मध्यमा के नीचे भाग में कमल है (६) और कमल के नीचे पताका सहित ध्वज का चिन्ह है (७) कनी अँगुरिया के नीचे अङ्कुश (८) और एड़ी में अर्द्धचन्द्र सुशोभित है (९) अर्द्ध चन्द्र के ऊपर कल्पलता है (१०) और कल्पलता के ऊपर पुष्प का चिन्ह है (११) ये ग्यारह चिन्ह हुए। अब श्रीराधिकाजी के दाहिने चरण के चिन्हों को प्रकाशित करते हैं- अँगूठा के मूल में शङ्ख (१) कनी अँगुरिया के नीचे श्रीयज्ञवेदि विराजमान है (२) श्रीयज्ञवेदी के नीचे कुण्डल सुशोभित है (३) तर्जनी और मध्यमा के नीचे पर्वत का चिन्ह है (४) एड़ी में मत्स्य (मछली) चमक रही है (५) मत्स्य के ऊपर रथ है (६) रथ की बाईं ओर शक्ति (७) और रथ की दाहिनी ओर गदा (८) विराजमान है ऐसे आठ चिन्ह मिलकर सब १९ उन्नीस चिन्ह हुए। इसके पीछे श्रीराधिकाजी के बाँए हस्त कमल के चिन्ह गिनाते हैं। जैसे तर्जनी और मध्यमा के बीच से लेकर कनिष्ठा के नीचे होती हुई कुछ थोड़ी सी हाथ के बाहिरी भाग तक पहुंची हुई एक परमायु की रेखा विराजमान है (१) और परमायु रेखा के नीचे हाथ के बाहिरी भाग से लेकर तर्जनी और अँगूठा के बीच भाग (हिस्सा) में प्राप्त दूसरी रेखा है (२) तैसेही अँगूठा के नीचे पहौंचे से उठी हुई टेढ़ी चाल से बीचकी रेखा से मिलकर तर्जनी और अँगूठा के बीचाबीच में प्राप्त तीसरी रेखा जाननी चाहिये (३) तैसेही अन्य रेखाओं को युक्ति से विभाग कर दिखलाते हैं। अँगूठा सहित अंगुरियाओं के अग्रभाग में ५ पाँच शङ्ख के चिन्ह हैं (८) अनामिका के नीचे हाथी (९) परमायु रेखा के नीचे घोड़ा (१०) बीच की रेखा नीचे, बैल [११] कनी अंगुरियाके नीचे अङ्कुश (१२) व्यजन, पंखा (१३) बेल का वृक्ष (१४) यूप (१५) बाण (१६) तोमर (शास्त्र विशेष) (१७) और माला, (१८) पंखा से आदि लेकर माला तक ६ चिन्ह शोभा को नहीं उल्लङ्घन करते हुए अर्थात्, जिन २ स्थानों में विराजमान होने से चरणों की शोभा

नित नई चढ़ती रहे, बस उन्हीं स्थानों में विराजमान जानने, इस प्रकार ए अठारह चिन्ह हुए, अब श्री राधिकाजीके दाहिने हस्तकमल के चिन्हों को लिखते हैं। परमायु रेखादि तीन रेखा तो बाँए हस्त कमल की तरह, दाहिने हस्तकमल में जाननी अँगूठा सहित अँगुलियान के अग्रभाग अर्थात् पोंटुआन में ५ पाँच शङ्ख चिह्न जानने ॥ ५ ॥ तर्जनी के नीचे, चमर का चिह्न है १ दाहिने हस्तकमल में भी, कनी अँगुरिया के नीचे अँकुशका चिन्ह है १ प्रासाद, गृह का चिन्ह १, नगाड़े का चिन्ह १ वज्र, १ छकड़ा के जूआ का चिन्ह १ धनुष, १ तलवार १ और झारी के चिन्ह १ ए सब चिन्ह चरण की शोभा को बढ़ाते हुए, यथायोग्य अपने अपने स्थानों में स्थित हैं। इस प्रकार पहिले अठारह चिन्हों के साथ १७ सत्तरह मिलकर सब ३५ पैंतीस चिन्ह हुए ॥

अथ श्रीकृष्णकरचरणाब्जचिन्हानि लिख्यन्ते ध्वजादीनां धारणस्थानं प्रयोजनश्चोक्तं स्कान्दे ॥ दक्षिणस्यपदाङ्गुष्ठमूले चक्रं बिभर्त्यजः॥ तत्र भक्त जनस्यारिषड्वर्गच्छेदनायसः ॥ मध्यमाङ्गुलिमूले च धत्ते कमलम च्युतः ॥ ध्यातृचित्तद्विरेफाणां लोभनायातिशोभनम ॥ पद्मस्याधो ध्वजंधत्ते सर्वानर्थजयध्वजम् , कनिष्ठा मूलतो वज्रं भक्तपापाद्रिभेदनम ॥ पार्ष्णिमध्येऽङ्कुशंभक्तचित्तेभव शकारिणम भोगसम्पन्मयंधत्ते यवमङ्गुष्ठपर्वणीति ॥ वज्रंवै दक्षिणे पार्श्वे अंकुशोवैतदग्रतः ॥ इति तत्रैव स्कान्दे। श्रीकृष्णमधिकृत्योक्तत्वात् ॥ कनिष्ठामूलेऽङ्कुशस्तत्तले वज्रमित्याहुः साम्प्रदायिकाः पार्ष्णावंकुशस्तु

नारायणा देर्ज्ञेयः तदेवं चक्रध्वजकमलवज्राङ्कुशयवा इतिषट्चिन्हानि श्रीकृष्णस्यदक्षिणेचरणेअंगुष्ठतर्जनी मारभ्य यावदर्द्धचरणमूर्ध्वरेखा ७ चक्रस्य तले छत्रम ८ अर्द्धचरणतले चतुर्दिगवस्थितस्वस्तिकचतुष्टयम ९ स्वस्तिकचतुःसन्धिषु जम्बूफलचतुष्टयम १० स्वस्तिकमध्ये अष्टकोणमित्येवमेकादशाचिन्हानि ११ अथ श्रीकृष्णवामचरणस्थचिन्हानि ॥ तथावामपदाङ्गुष्ठ मूलतस्तन्मुखंदरम ॥ सर्वविद्याप्रकाशायदधाति भगवानसाविति ।१। मध्यमामूलेऽम्बरमन्तर्बाह्यमण्डल-द्वयात्मकम २ तदधः कार्मुकं विगतज्यम ३ तदधो गोष्पदम् ४ तत्तले त्रिकोणम ५ तदभितः कलशानां चतुष्टयं क्वचित्त्रितयंदृष्टं ६ त्रिकोणतलेऽर्द्धचन्द्रोऽग्रद्वय स्पृष्टत्रिकोणकोणद्वयम ७ तदधोमत्स्य इत्यष्टौमिलित्वा ऊनविंशतिः अथ श्रीकृष्णहस्तकमलचिन्हानि ॥ शङ्खार्द्धेन्दुयवाङ्कुशैररिगदाछत्रध्वजस्वस्तिकैर्यूपाब्जाऽ-सिहलैर्धनुः परिघकश्रीवृक्षमीनेषुभिः नन्द्यावर्तचयैस्त थाङ्गुलिगतै रेतैर्निजैर्लक्षणैर्भातः श्रीपुरुषोत्तमत्वगमकै पाणी हरे रङ्कितौ ॥

अब श्रीकृष्णचन्द्रजू के हस्तकमल एवं चरण कमल के चिन्ह लिखते हैं— स्कन्द पुराण में ध्वजादि चिन्हों के धारण

करने के स्थान और प्रयोजन नाम फल इस प्रकार कहे हैं कि—अज (जन्म से रहित) वह अनन्त ब्रह्माण्डों में प्रसिद्ध श्रीकृष्ण चन्द्रजी दाहिने चरण के अंगूठा के मूल में भक्तजनों के काम क्रोधादि ६ शत्रुओं के दमन के लिये चक्र चिन्ह को धारण करते हैं॥ अच्युत भगवान् दाहिने चरण की मध्यमा (बीच) की अँगुरिया के मूल में ध्यान करनेवाले भक्तजनों के मनरूपी भौंरा के मोहन (लुभाने) के लिये अत्यन्त शोभायमान कमल को धारण करते हैं कमल के नीचे भक्तजनों के सम्पूर्ण अनर्थों के जीतने वाले पताका सहित ध्वज को भगवान् धारण करते हैं। कनिष्ठा, कनी अंगुरिया के मूल में भक्तजनों के पाप रूपी पहाड़ों के तोड़ने के लिये वज्र को धारण करते हैं॥ श्री नारायण एड़ी के बीच में भक्तों के मन रूपी मतवारे हाथी को वशमें करने के लिये अंकुश को धारण करते हैं॥ अंगूठा के पर्व (पोटुआ, में दिव्य भोग और संपत्तिमय जौके चिन्ह को धारण करते हैं। उसी स्कन्द पुराण में श्रीकृष्णका अधिकार करिकें यह बात कही है कि—दक्षिण पार्श्व (दाहिनी ओर) वज्र और वज्र के आगे अङ्कुश है श्री कृष्ण के भक्तजन इसका अभिप्राय इस प्रकार वर्णन करते हैं कि—कनिष्ठा के मूल में अंकुश और अंकुश के नीचे वज्र विराजमान है। एड़ी में अँकुश तो श्रीनारायणादिकों के जानने योग्य है चक्र-ध्वज-कमल-वज्र अंकुश और जौ सब मिलकर ९ हैं चिन्ह श्रीकृष्ण के दाहिने चरण के हुए। दाहिने चरण के अंगूठा और तर्जनी से लेकर आधे चरण तक एक ऊर्द्ध रेखा है। चक्र के नीचे छत्र है—आधे चरण के नीचे बारों दिशाओं में चार स्वस्तिक (सातिये) सुशोभित हैं। चार सातियों की सन्धियों में जामुन के फल के समान आकार वाले चार चिन्ह हैं॥ स्वस्तिक (सातिये) के बीच में अष्टकोण है। इस प्रकार ११ चिन्ह हुए। अब श्रीकृष्णचन्द्रजी के बाँए चरण के चिन्हों को लिखते हैं॥ श्रीभगवान् के बाँए चरण के अँगूठा के मूल में मूल की ओर मुख किये हुए भक्तजनों की सब विद्याओं के प्रकाश के लिये शङ्ख को धारण करते हैं। मध्यमा के नीचे बाहिर भीतर दो मण्डल वाले आकाश के चिन्ह को धारण करते हैं॥ आकाश मण्डल के नीचे बिना डोरी वाले धनुष के चिन्ह को धारण

करते हैं धनुष के नीचे गौ के खुर का चिन्ह, और गौ के खुरके नीचे त्रिकोण का चिन्ह विराजमान है त्रिकोण के चारों ओर चार-या तीन कलश के चिन्ह हैं, त्रिकोण के नीचे अर्द्धचन्द्र अपनी आगे की दोनों किनारों से त्रिकोण के दोनों कोणों को छूता हुआ विराजमान है अर्द्ध चन्द्र के नीचे मत्स्य (मछली) का चिन्ह है ऐसे आठ चिन्ह मिलकर, सब १९ उन्नीस चिन्ह हुए।

अब श्रीकृष्णचन्द्रजूके हस्तकमल के चिन्हों का प्रकार दिख ते हैं—पुरुषोत्तमपने के जनाने वाले निज (असाधारण) दूसरों के हस्तों में नहीं होनेवाले, शङ्ख, अर्द्धचन्द्र, जौ, अङ्कुश, चक्र, गदा, छत्र, ध्वज, स्वस्तिक (सातिया) यज्ञ खम्भ, कमल, खड्ग, (तलवार) हल, धनुष, बेंड़ा, बेल का वृक्ष, मीन, बाण और तैसे ही अँगूठा सहित अँगुरियानमें प्राप्त पाँच शङ्ख तक चिन्हों से चिन्हित श्रीहरिभगवान् के दोनों हस्तकमल सुशोभित हैं।

अथ श्रीराधावामचरणचिन्हानि

१ यवः— श्रीराधिकाजी अपने वाम चरणमें जौ का चिन्ह इस लिये धारण करती हैं कि संसार के जीवन हमहीहैं॥

२ चक्रम्— भक्तजनों के काम क्रोधादि ६ शत्रुओं के दमन के लिये चक्र चिन्ह है

३ छत्रम्— लक्ष्मी से आदि लेकर सब स्त्रियों की स्वामिनी श्री राधिकाजू हैं, इस बातको छत्र प्रकाशित करता है॥

४ वलयम्— कङ्कणम्-प्रियाजी प्रिय के साथसुरत में शब्दायमान कङ्कण को देख, अपने चरणों में धारण करतीहैं ।

५ ऊर्द्ध रेखा—शरणागत भक्तों को,ऊपर के लोक की प्राप्ति की सूचना देती है।

६ कमलम्— भक्तजनों के मनरूपी भौंरा के मोहन करने के लिये धारण करती हैं।

७ ध्वजः—— पताका सहित ध्वजा को भक्तों के निडर करने को धारण करती हैं।

८ अंकुशः—— अंकुश का चिन्ह, भक्तों के मनरूपी हाथी को वश में करने के लिये है अथवा प्यारे का मतवारो मन रूपी हाथी अन्यत्र न जाय।

९ अर्द्धचन्द्रः··· शिव और पार्वती के शिरो भूषण सदीके अर्द्धचन्द्र श्रीप्रियाजीके चरण में दण्डवत् करते रहते हैं। इस बात को अर्द्धचन्द्र चिन्ह जनाता है अथवा सखीजन को आनन्द देने को है।

१० कल्पलता···श्रीकृष्णरूप कल्पवृक्ष के साथ श्यामारूपी कल्पलता नित्य विराजमान रहतीहै इस बात का सूचक श्रीकल्पलता का चिन्ह है॥

११ पुष्पम्··· कीर्त्तिरूप गन्ध से परिपूर्ण फूल को नित्य श्रीकृष्ण चरणारविन्दों में सत्काररूप से अर्पण करती रहती हैं इसका सूचक-पुष्प चिन्ह है।

श्रीराधादक्षिणचरणस्यचिन्हानि ।

१२ शङ्खः····· भक्तजनों की रक्षा के लिये और सब विद्याओं के प्रकाश के लिये शङ्ख चिन्ह है ॥

१३ यज्ञवेदी··· मदेक शरणभक्तश्रीरूपस्वाहा से इस यज्ञवेदी में सत्कर्म रूपी हवि का प्रक्षेप करते हुए श्री कृष्ण यश को प्राप्त होते हैं, बस यही, यज्ञ वेदी चिन्ह का प्रयोजन है-

१४ कुण्डलम्—श्रीकृष्णके कर्णकेपास अत्यन्त झुककर हमारे चरणों के भूषणोंकी रमणीय ध्वनिको नित्यकहें इस कारण श्री राधिका जी अपने दक्षिण चरण में सादर कुण्डल चिन्ह धारण करती हैं ॥

१५ पर्वतः— हरिदासों में श्रेष्ठ, एवं पर्वतों के राजा गिरिराज महाराज अपने वर को सत्य करते हैं इस कारण पर्वत धारण करती हैं ॥

१६ मत्स्यः··· मीन-कामदेव की ध्वजा है इससे अपनी आज्ञाकारिणी कामिनीनकी कामनाओं की पूरण करने वाली भी श्रीराधिकाजी हैं, इस बातका जनाने वाला मत्स्य चिन्ह है ॥

१७ रथः····· निकुञ्ज यात्रा के समय हमको और हमारी सहचरियों को परिश्रम न होय, इसके लिये रथ चिन्ह है

१८ शक्तिः·····मूल्य के विना ही मिली हुई शक्ति हमारे भक्तों के दुःख के नाश करनेवाली है इसलिये शक्ति चिन्ह है

१९ गदा····· हम कामरूपी मतवारे हाथी के अहङ्कार की हानि अपने चरण की ठोकर से करती हैं इस लिये गदा चिन्ह है ॥

श्रीराधिकाजी के बांए हस्तकमल के चिन्हों के फल लिखते हैं ॥

१ परमायु रेखा
२ द्वितीय रेखा
३ तृतीय रेखा } ए तीनों रेखा- ध्यान करनेवाले भक्तजनों को आयुरादि शुभ फलों को देती हैं।

५ शङ्खः— भक्तजनों की रक्षा के लिये और सब विद्याओं के प्रकाश के लिये शङ्ख चिन्ह है ॥

१ कुञ्जर-हाथी- जैसे श्रीभगवान ने गजराज का उद्धार कर अपने चरण के समीप में स्थापन किया, तैसे ही जिसका मैं उद्धार करती हूं उसको मैं अपने चरण के समीप में स्थापन करती हूं, यही गज चिन्ह का प्रयोजन है

१ अश्वः-घोड़ा- जैसे भगवान् अश्वमेधादि यज्ञों के फलदाता हैं तैसेही हमभी फल देती हैं, इस कारण अश्व चिन्हहै

वृष बैल— भक्तों के भक्तिरूप धर्म की वृद्धि के लिये वृषका चिन्ह है ॥

अंकुश— अंकुश का चिन्ह भक्तों के मनरूपी हाथी को वश में करने के लिये है, अथवा प्यारे का मतवारो मन रूपी हाथी अन्यत्र न जाय ॥

१ व्यजन-पङ्खा भक्तोंके आध्यात्मिकादि तीन तापों की शान्ति के लिये व्यजन का चिन्ह है ॥

१ बिल्ववृक्ष— बेल का पेड़-श्रीराधारूप लक्ष्मी को परमप्रिय होने से धारण करती हैं ॥

१ यूप-यज्ञ का खम्भ···यूप चिन्ह के ध्यान से यज्ञादि फल होताहै

१ बाण····· भक्तों के मद मत्सरादि मृगों के नाश के लिये बाण चिन्ह है ॥

१ तोमर····· शस्त्र विशेष, भक्तों को विघ्न करनेवाले शत्रुओं के दमनके लिये तोमर नाम के शस्त्र विशेषका चिन्ह है

१ माला····· प्रीतिमयी माला को, नित्य प्यारेको धारण कराती हैं इस तत्त्व के जनाने के लिये मालाका चिन्ह है ॥

श्रीराधिकाजी के दाहिने हस्तकमल के चिन्हों-के फल लिखते हैं

३ परमेायु रेखादित्रयम्- ··· ए तीनों रेखा भक्तों के आयुरादि शुभ फलदेती हैं ॥

५ शङ्खः······ भक्तों की रक्षा के लिये और सब विद्याओं के प्रकाश के लिये शङ्ख चिन्ह है ॥

१ चामरम्······ चमर ढुरते हुए भक्तजन हमारे लोक को पधारे इसके लिये चमर चिन्ह है ॥

१ अङ्कुशम्··· भक्तों के मनरूपी हाथीको वश में कर, अपनी ओर लगाने को अंकुश धारण करती हैं ॥

१ प्रासादः······महल या घरका चिन्ह के ध्यान से-निकुञ्जादिपुरों की प्राप्ति होती है, इसलिये प्रासाद चिन्ह है ॥

१ दुन्दुभिः······भक्तों की कीर्त्ति का डंका बजाने के लिये दुन्दुभि चिन्ह ॥

१ वज्रम्······ भक्तों के पापरूपी पहाड़ों को नष्ट करने के लिये वज्र चिन्ह है ॥

१ शकट युग··· योग क्षेमवहाम्यहम्- इस गीता के वचन के अनुसार, भक्तों के सब चिन्तारूपी भार को दूर करने के लिये गाड़ा के जूआ का चिन्ह है ॥

१ धनुष······ भक्तजनों की रक्षा के लिये धनुषका चिन्ह है ॥

१ असि········ भक्तों के पाप रूपी पशुओं के नाश के लिये खड्ग चिन्ह है ॥

१ भृङ्गार······ भक्तजनों के हृदय कमल को सिञ्चन के लिये अथवा शीतल करने को झारी का चिन्ह है ॥

ये १८ चिन्ह हुए

श्रीकृष्णचन्द्रजी के दाहिने चरण के चिन्हों के फल लिखते हैं।

१ चक्रम्..... भक्तजनों के काम क्रोधादि ६ शत्रुओं के दमन के लिये चक्र चिन्ह है।

२ ध्वज..... पता का सहितध्वज को भक्तों के निडर करने को धारण करते हैं।

३ कमल..... भक्तजनों के मन रूपी भौंरा के मोहन करने के लिये कमल चिन्ह धारण करते हैं।

४ वज्र..... भक्तों के पापरूपी पहाड़ों को नष्ट करने के लिये वज्र धारण करते हैं।

५ अङ्कुश..... अङ्कुश का चिन्ह भक्तों के मन रूपी हाथी को वश में करने के लिये है।

६ यव..... संसार के जीवन हम हैं इस बात को जनाने के लिये जौका चिन्ह है और देवकार्य में जौ मुख्य है इस से पाद में जौका चिन्ह धारण किया है। और जो पुरुष भक्ति से हमारे चरण का भजन करता है वह देवऋण से छूट जाता है।

७ ऊर्द्धरेखा... व्रजस्वामी श्री कृष्णचन्द्र जी अपने चरणारविन्द के ऊर्द्ध रेखा चिन्ह से प्राणिमात्र को इस प्रकार ज्ञान कराते हैं कि जो पुरुष हमारे चरणारविन्द को हृदय में धारण करते हैं वे पुरुष ऊर्द्धरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) हों, अत्यन्त ऊपर के लोक को प्राप्त होंय। इस लोक में प्रसिद्ध और ऊँचे होंय इससे हमारे चरण से अन्य न कोई सेव्य है और न कोई ऊँचा है।

८ छत्र..... श्री कृष्णचन्द्र चरण में छत्र के चिन्ह से इस बात को प्रगट करते हैं कि मैंने अपने ही स्वरूप भूत गोवर्धन रूप छत्र करिके इन्द्र की वर्षा से व्रज बचाया मैं अपने चरण सेवी पुरुषों के भय और

महा दुख, रूप धूप को वारण करता हूं इसके पीछे उन्हीं पुरुषों को पृथिवी मण्डल में राजाओं में श्रेष्ठ छत्रधारी बना देता हूं।

९ वारसातियां भक्तजनों के मङ्गल के लिये स्वस्तिक चिन्ह है। अथवा ईश्वर स्वस्तिक चिन्हसे शान्त रसको धारण करते हैं।

१० जम्बूफल चतुष्टयम् } जामुन के फल के समान चिन्हों से यह सूचित करते हैं कि-जम्बूद्वीप के वासी पुरुषों को हमारे चरणों की सेवा करना ही मुख्य कर्म है।

११ अष्टकोणम् अष्टकोण के चिन्ह से भगवान् सूचित करते हैं कि जो पुरुष हमारे चरणारविन्दों की भक्ति करता है वह आठों दिशाओं का स्वामी होता है और आठ अणिमादिक सिद्धियां पास खड़ी रहती हैं।

अब श्रीकृष्णचन्द्र के बांये चरण के चिन्ह दिखाते हैं।

१ शङ्ख..... श्रीहरि ध्वनि से युक्त शङ्ख के चिन्ह से अपने भक्तों को इस बात की सूचना देते हैं कि हमारे भक्तोंका सदा विजय होय दूसरा भाव यह है कि जल तत्व से युक्त हमारे चरणों से जगत्पावनी श्री गङ्गा जी प्रकट हुई हैं

२ आकाश... भीतर बाहिर दो मण्डल वाले आकाश के शून्य चिन्ह से भगवान् सूचित करते हैं कि हम व्यापक होने पर भी सबसे अलग हैं।

३ धनुष... हरिभगवान् धनुष के चिन्ह से सूचित करते हैं कि, बड़े बड़े अहङ्कारी पुरुष, चरण के समीप आकर झुककर प्रणाम करें।

४ गोष्पद... गोखुर— श्रीकृष्ण के चरण में आये हुए भक्तों को जैसे जल भरे हुए गौ के खुरके गड्ढे को उल्लङ्घन में परिश्रम नहीं होता है तैसेही संसाररूपी समुद्र के उल्लङ्घन में परिश्रम नहीं होता है यही गोखुर चिन्ह का अभिप्राय है॥

५ त्रिकोण— त्रिगुण एवं तीनों भुवन के आश्रय हम हैं-ब्रह्मा उपेन्द्र, महेश्वर, ए तीनों हमारे ही पुत्र हैं, देव तिर्यक् और मनुष्य इन तीनों करिके हम ही आराधनीय हैं। इत्यादि अनेक भाव का बोधक त्रिकोण चिन्ह हैं।

६ कलश····· शरणागत भक्तों को अमृत की प्राप्ति होती है और अनेक प्रकार के मङ्गलों का जनाने वाला अमृत कलश का चिन्ह है।

७ अर्द्धचन्द्र— अर्द्धचन्द्र चिन्ह से भगवान् यह सूचित करते हैं कि जैसे चन्द्रमा अनेक स्त्रियों के पति हैं तैसे ही बहुत गोपीन के जो हमें एक पति हुए तो योग्य ही हैं अयोग्य नहीं है।

८ अष्टकोण— अष्टकोण के चिन्ह से भगवान् सूचित करते हैं कि जो पुरुष हमारे चरणारविन्दों की भक्ति करता है वह आठोंदिशाओं का स्वामी होता है और आठ अणिमादिक सिद्धियां पास खड़ी रहती हैं।

९ मत्स्यः—— अत्यन्त चपल मीन की तरह एक बारगी हम किसी के ध्यान में नहीं प्राप्त होते हैं अथवा श्रीमत्हरिने काम को जीतकर अपने आप ही अपने चरण में मत्स्य ध्वजा का चिन्ह धारण किया।

अब श्रीकृष्णचन्द्रजी के हस्तकमल के चिन्होंके फल प्रकाशित करते हैं।

१ शङ्ख—— श्रीहरि ध्वनि युक्त शङ्ख के चिन्ह से सबज्ञनों को जनावें हैं कि भक्तजन प्रेम से मेरे चरणों को और भय रहित मेरे लोक को प्राप्त होवें।

२ अर्द्धचन्द्र··· श्रीहरि चरण में चन्द्र के चिन्ह से प्रकट करें हैं कि अमृत की वर्षा से भक्तजनों के मन के सन्ताप को हरण करने वाला अर्द्धचन्द्र चिन्ह है। चरण में शिर रखने वाले भक्त रुद्र के तुल्य हैं।

३ यव:— अन्नों का राजा शुद्ध यह जौ मुनियों का अन्न और लोक में हविष्यान्न करिके प्रसिद्ध है इस कारण भक्तों को ज्ञान के लिये और रक्षा के लिये जौका चिन्ह धारण किया।

४ अंकुश— भक्तों के मन रूपी हाथी जिस किसी विषय में रमण न करैं किन्तु हमारे चरण में रमण करैं अथवा हमारे भक्त गणेश तुल्य पण्डित होंय इस कारण अंकुश है

५ चक्र····· भक्तजनों, के काम क्रोधादि ६ शत्रुओं के दमन के लिये चक्र चिन्ह हैं

६ गदा····· कामरूपी मतवारे हाथी के अहङ्कार के नाश के लिये गदा चिन्ह है।

७ छत्र····· छत्र का फल पहिले लिख चुके हैं।

८ ध्वज····· पता का सहित ध्वज को भक्तों को निडर करने को धारण करते हैं।

९ स्वस्तिक··· भक्तजनों के मङ्गल के लिये स्वस्तिक चिन्ह है हमारे भक्त अपने हृदय में हमारे चरणों को धारण करते हुये कल्याण को प्राप्त होंय इस कारण सदा स्वस्तिक चिन्ह धारण करते हैं

१० यूप··· } कमल चिन्ह भक्तजनों के मन रूपी भौंरा के मोहन
११ कमल··· } करने को है।

१२ असि····· भक्तों के पापरूपी पशुओं के नाश के लिये धारण करते हैं।

१३ हल—— भक्तों के साथ बैर करने वाले पुरुषों के दमन के लिये हलका चिन्ह है।

१४ धनुष— श्रीहरि भगवान धनुष के चिन्ह से सूचित करते हैं कि बड़े बड़े अहङ्कारी लोग चरण के समीप आकर झुककर प्रणाम करै यह धनुष चिन्ह का प्रयोजन है

१५ परिघ— भक्तों के हृदय में अज्ञान रूपी शत्रु न आने पावे इसके लिये लोह दण्ड का चिन्ह है।

१६ बिल्ववृक्ष- परम प्रिया श्रीराधिका रूप लक्ष्मी जी को अत्यन्त प्रिय होने से बिल्ववृक्ष का चिन्ह धारण करते हैं।

१७ मीन—— कामदेव की ध्वजा मीन है इससे अपनी आज्ञा कारिणी कामिनीन की कामनाओं को पूर्ण करने वाले श्रीकृष्णचन्द्र हैं इस बात का सूचक मीन चिन्ह है।

१८ नन्द्यावर्त्त शङ्ख—— } श्रीहरि भक्त जनों की रक्षा के लिये और सब विद्याओं के प्रकाश के लिये पोडुआन में भी शङ्ख चिन्ह धारण करते हैं॥

शुभं भूयात्-

श्री वृन्दावन वास्तव्यश्रीहरिप्रियाशरणोपनामक पं० दुलारे प्रसादशास्त्रिणा संगृहीताश्रीराधाकृष्णकरचरणाब्ज—चिन्हप्रकाशिका फलसहितासमाप्ता

श्री वृन्दावन निवासी श्री निम्बार्क पाठशाला के अध्यापक पं० रामप्रसाद शर्मा की बनाई हुई फल सहित श्री राधाकृष्ण कर चरणाब्ज चिन्ह प्रकाशिका की भाषाटीका समाप्तहुई।

* श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः *

हा नाथ! हा रमण! हा प्रणयैकसिन्धो! काऽसि प्रिय प्रकटय स्वविलोकनं मे ॥
मां वेद्मि यद्यपि भवन्तमिहं प्रसन्न दूरे ह्यशोचितमथाप्यसुभिस्तु नो भिः १
यावज्जीवितमिदं वहिरेति लोलं तावद्विमुच्य रुचमांक्षपथं प्रयाहि ।
नोचेद्गजीवितमिदं वपुः सदीय वांछासिलत्यमहहासितदेनसत्यम् २

विषोद्धतानाथविषाऽनलोपमे विषादभूमौ भवसागरे विभो ।
परं प्रतीकार मपश्यताऽधुना मयाऽयमात्मा भवते निवेदितः ॥ ३ ॥

भयाऽनलज्वालविलुप्तचेतनः शरण्य तेऽङ्घ्रि शरणं भयाद्यताम् ।
विभाव्य भूयोऽपि दयासुधाम्बुधे विधेहि मे नाथ यथा यथेच्छसि ४

विहाय संसारमहामरुस्थलीमलीकदेहादिमिलन्मरीचिकाम् ।
मनोमृगो मे करुणाऽमृताम्बुधे त्विषा तृषार्त्तः त्वयि गाढमीहते ॥ ५ ॥

त्वदङ्घ्रिफुल्लाम्बुजमध्यनिर्गलन्मरन्दनिःस्यन्दनितान्तलम्पटः ।
मनोमिलिन्दो मम मुक्तचापलस्त्वदन्यमीशान तृणाय मन्यते ॥ ६ ॥

जगत्त्रयत्राणविधौ धृतव्रतं तवाङ्घ्रिराजीवमपास्य ये जनाः ।
शरण्यमन्यन्मृगयन्ति यान्ति ते नितान्तमीशान कृतान्तदेहलीम् ॥ ७ ॥

रमामुखाम्भोजविकासनक्षमो जगत्त्रयोद्भावविधानदीक्षितः ।
कदा मदज्ञानविभावरीं हरे हरिष्यति त्वन्नयनाऽरुणोदयः ॥ ८ ॥

सु यौवनपाण्डुरपाण्डुमण्डलप्रभास्फुरत्कुण्डलताण्डवाद्भुतम् ।
गदाब्जशङ्खाम्बुजफुल्लपङ्कज कदा मदक्ष्णोरतिथिर्भविष्यति ॥ ९ ॥

सुराऽऽपगातुङ्गतरङ्गचालितां सुरासुरानीकललाटलालिताम् ।
कदा दधे देव दयाऽमृतोदधे भवत्पदाम्भोरुहधूलिधोरणीम् ॥ १० ॥

प्रिय भक्तवृन्द !

जिन विदेशी महानुभावों को इस पुस्तक की आवश्यकता हो वे दो आने का टिकट डाक खर्च भेज कर निम्नलिखित पते से बिना मूल्य मंगा सकतें हैं।

मिलने का पता—

श्रीहरिप्रियाशरणोपनामक पं० श्रीदुलारेप्रसाद शास्त्रीजी श्रीविहारीजी की बगीची

श्रीवृन्दावनधाम।